खादी ग्रामोद्योग विद्यालय व्याख्यान माला – ४

लोकनीति के मूलतत्व

श्री दादा धर्माधिकारी

राजस्थान खादी संघ
खादीबाग (चौमू)
राजस्थान

मूल्य : ३५ न.पै.

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर ।

परिचय

दादा धर्माधिकारी का नाम शंकर त्र्यंबक धर्माधिकारी है, किन्तु परिवार के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वे दादा कहलाये। उनका यह नाम इतना प्रचलित हुआ कि अब उनका असली नाम बहुत ही थोड़े लोग जानते हैं।

दादा का जन्म १८९९ की १८ जून को बैतूल जिले के मूलताई ग्राम में हुआ। इनके पिता श्री त्र्यंबकराव धर्माधिकारी सरकारी न्यायाधीश थे। समाज में सत्यनिष्ठ और दृढ़चरित्र व्यक्ति के रूप में उनका बड़ा सम्मान था। १९२० में दादा नागपुर में कालेज की पढ़ाई में संलग्न थे, जब असहयोग की रणभेरी बजी, वे पढाई छोड़कर मैदान में कूद पड़े। कुछ समय बाद जब पं० सुन्दरलालजी और महात्मा भगवानदीनजी ने नागपुर में राष्ट्रीय विद्यालय आरंभ किया तो उसमें शिक्षण-कार्य करने लगे।

पिता के प्रभाव से आरंभ में गिरफ्तारी टलती रही, लेकिन १९३० में उन्हें जेल में डाल दिया गया और तब से यह सिलसिला चलता रहा। १९३५ में जमनालालजी बजाज दादा को वर्धा ले गये। १९३८ में काका कालेलकर के संपादन में आरम्भ होने वाले मासिक सर्वोदय के वे सह-संपादक हुये। १९४२ के आंदोलन के अवसर पर इसका प्रकाशन बंद कर दिया गया।

१९४२ के आन्दोलन में जेल यात्रा से लौटने के बाद दादा बापू के आदेश से मध्यप्रदेश की धारा सभा में गये। उन्हींके आदेश से बाद में केंद्रीय विधान-परिषद् के सदस्य बने और संविधान बन जाने तक वे उसमें रहे। दादा की रुचि शासनतंत्र में कभी नहीं रही, केवल बापू के आदेशपर कर्तव्य-पूर्ति के रूप में ही वे इन सभाओं में शामिल हुये।

दादा आरंभ से ही विचारक और चिंतक रहे हैं। विनोबा से उनका संपर्क १९२३ से है। वर्धा में रहने से यह घनिष्टता और आत्मीयता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। बापू के देहावसान के बाद विनोबा के भूदान

आन्दोलन में दादा ने अहिंसक-नवसमाज क्रांति के दर्शन किये तब से वे पूरी शक्ति और निष्ठा के साथ उसमें जुट गये। वे भूदान आंदोलन के एक तरह से 'मित्र तथा दार्शनिक' हैं। वे अपनी अप्रतिम शैली में भाषणों, लेखों और चर्चाओं के द्वारा सर्वोदय दर्शन, लोकनीति, नव समाज-रचना, साम्यवाद, समाजवाद आदि का विशद और व्यापक अध्ययन जनता और खासकर पढ़े-लिखे तथा विचारशील लोगों के सामने रखते रहे हैं। वे कथा-प्रसंगों, उपमावों और उदाहरणों के सहारे अपने विचार इस खूबी के साथ रखते हैं कि सुनने वाले मुग्ध हुये बिना नहीं रहते।

दादा को राजस्थान से विशेष स्नेह है। वे तथा उनकी दत्तक पुत्री विमला ठकार यहां आते रहते हैं। राजस्थान के भूदान आंदोलन तथा रचनात्मक कार्यकर्ताओं को इन दोनों से बहुत बल मिला है। अबकी बार चालीस गांव की सर्व सेवा संघ की बैठक के अवसर पर जब राजस्थान के मित्र दादा से मिले और राजस्थान का कार्यक्रम निश्चित हुआ तो मैंने दादा से यह वादा करा लिया कि वे इस दौरे के दरम्यान शिवदासपुरा जायेंगे और लोकनीति के विकास का विवेचन यहां दो भाषणों में करेंगे।

परिणामस्वरूप २४ अगस्त को दादा विद्यालय में आये। दादा के दो भाषण यहां हुए। उनमें उन्होंने राजनीति और लोकनीति के अंतर, लोकनीति के मूल तत्वों और उसके विकासक्रम का अत्यंत मौलिक, सारगर्भित और सरल विवेचन किया। प्रकाशन की दृष्टि से इन्हें मिला कर संक्षिप्त करना पड़ा है। विद्यालय-व्याख्यानमाला के अंतर्गत इनके प्रकाशित होने से मेरी बहुत दिनों की अभिलाषा पूर्ण हुई है। सर्वोदय विचार के प्रति रुचि रखने वाले सभी मित्रों को इससे चिंतन में सहायता मिलेगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

खादी-ग्रामोद्योग विद्यालय
शिवदासपुरा-जयपुर
विनोबा जयंति-१९५८

—जवाहिरलाल जैन

लोकनीति के मूलतत्व

[१]

तीन शब्द

आपने तीन शब्द अक्सर सुने होंगे–पहला शब्द है वर्ल्ड–गवर्नमेन्ट, (World-Government) अर्थात् सारी दुनियां की एक सरकार हो। अलग अलग देशों की अलग अलग सरकारें अब न रहें। वह दिन बहुत जल्दी आना चाहिये जिस दिन सारी दुनियां के लिये एक ही सरकार हो। सरकार एक ही होगी या कोई सरकार होगी ही नहीं।

दूसरा शब्द है इन्टरनेशनल सिटिजनशिप (Internationl Citizenship)। कुछ लोगों का कहना है कि सरकार एक हो या न हो, पर नागरिकता एक हो जानी चाहिये। दुनियां में अन्तर्राष्ट्रीय नागरिकता होनी चाहिये। अभी हाल ही में अमेरिका के एक व्यक्ति का–जिसे कुछ लोगों ने खब्ती माना–कहना था–मैं बगैर पासपोर्ट के दुनियां के सारे देशों में जाऊंगा। मैं सारे संसार का नागरिक हूं। कहीं भी जाने में मुझे रुकावट नहीं होनी चाहिये। एक देश से दूसरे देश में जाने के लिये अब किसी की इजाजत की जरूरत नहीं है। मनुष्यमात्र को दुनियां में इस पृथ्वी पर चाहे जहां जाने की आजादी होनी चाहिये। इस अर्थ में मैं अंतर्राष्ट्रीय नागरिक हूं।

विश्व–नागरिक एक अलग चीज है। अंतर्राष्ट्रीय नागरिकता दूसरी। इन दोनों फरक को बतलाने के लिये मैंने पहले एक जागतिक सरकार का उल्लेख किया। जागतिक सरकार का नागरिक विश्व-नागरिक होगा, वह अंतर्राष्ट्रीय नागरिक नहीं कहलायेगा। अलग अलग राष्ट्र के होते हुये भी एक राष्ट्र के मनुष्य को दूसरे राष्ट्र में जाने से कोई रोके

नहीं, किसी तरह के परवाने की जरूरत न हो, यह अंतर्राष्ट्रीय नागरिकता कहलाती है। इण्टरनेशनल सिटिजनशिप और वर्ल्ड सिटिजनशिप में यह मूलभूत अंतर है।

जवाहरलालजी अंतर्राष्ट्रीय नेता हैं। गांधी एक तरह से सारे संसार के नेता थे। लेकिन उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में लोग वर्ल्ड गवर्नमेण्ट की बात करते हैं। कोई सरकार सारे संसार की थी और उस सरकार का गांधी अध्यक्ष या प्रधानमंत्री था—जैसी बात नहीं थी। फिर भी संसार के नेताओं में से वह एक नेता समझे जाते थे। किसी एक राष्ट्र के राज नेता नहीं थे। किसी राष्ट्र के राज नेता न हों और फिर भी सारे संसार के नेता समझे जावें वह एक अपनी विशेषता थी गांधी की। जवाहरलालजी भारत के राज नेता भी हैं। वे इस देश के राजनेता हैं और संसार में अंतर्राष्ट्रीय नेता समझे जाते हैं।

तीसरा शब्द है—इण्टरनेशनल मेम्बरशिप (International membership)। नागरिकता का संबंध देश और सरकार से होता है। सदस्यता का संबध है संस्था से या पक्ष से। दुनियां के अधिकांश देशों में कम्यूनिस्ट पार्टी है। चीन, रूस, इंग्लेण्ड और अमेरिका में इन देशों की कम्यूनिस्ट पार्टियां हैं। यूरोप में और एशिया के बहुत से देशों में अलग अलग सोशलिस्ट पार्टियां हैं। सोशलिस्ट पार्टी का सदस्य अगर सारे देशों की सोशलिस्ट पार्टी का सदस्य है तो उसकी सदस्यता अंतर्राष्ट्रीय सदस्यता हो जाती है। इस तरह संस्था की सदस्यता भी अन्तर्राष्ट्रीय सदस्यता हो सकती है। मुसलमान तुर्किस्तान में हैं, इराक में हैं, मिश्र में है। अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत, चीन और रूस में भी मुसलमान हैं। ये सब मुसलमान इसलाम संप्रदाय के अनुयायी हैं। मजहब के नाते उनकी सदस्यता अन्तर्राष्ट्रीय है। यों किसी एक देश का मुसलमान अपने देश का नागरिक है, लेकिन मुसलमान के नाते वह दुनियां में मुसलमान जहां जहां रहते हैं उन सारे देशों के मुसलमान संप्रदाय का वह सदस्य है।

विश्व-मानवता

इन सब के अलावा एक और शब्द है, जिसमें इन सब को शामिल कर सकते हैं और जो इन सब से व्यापक है। वह शब्द है मनुष्य की मानवता। मानवता में सदस्यता भी आ जाती है—दोनों तरह की नागरिकतायें आ जाती हैं। एक राष्ट्रीय नागरिकता और दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय नागरिकता। इसलिये विनोबा के मुंह से आप हमेशा एक शब्द सुनते हैं कि आज हमें विश्व-मानव बनना है। विनोबा यह नहीं कहता कि विश्व-नागरिक बनना है। विश्व-नागरिक की बात जवाहर-लालजी कभी कभी कह देते हैं। दुनियांभर के जितने लोग हैं उनको अपने आपको विश्व-नागरिक मानना चाहिये—यह जवाहरलालजी कहते हैं। दूसरे लोग भी कह देते हैं, पर गांधी और विनोबा विश्व-नागरिकता की बात नहीं करते। वे जब जब बात करते हैं विश्व-मानवता की करते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य के नाते हम दुनियांभर के सारे मनुष्य एक हैं। नागरिकता के ही नाते नहीं, सदस्य के ही नाते नहीं, बल्कि मानवता के नाते। इन दोनों में क्या अन्तर है ?

नागरिकता औपचारिक है

नागरिकता फार्मल (Formal) अर्थात् औपचारिक है। आप भारत के नागरिक हैं। भारत के नागरिक जन्म से अवश्य हैं, लेकिन यह आपके संविधान की दी हुई नागरिकता है। इस देश के संविधान ने आपको नागरिकता दे दी। कभी ऐसा होता है कि एक मनुष्य इंग्लेण्ड से आता है। कुछ वर्ष यहां रहता है। उसको भारतवर्ष की नागरिकता मिल जाती है। इसे नेचुरलाइजेशन (Naturalization) कहते हैं, अर्थात् कोई किसी जगह अमुक समय तक रह जाता है तो वहां का वह प्राकृतिक नागरिक समझ लिया जाता है।

नेचुरलाइजेशन एक दूसरी तरह का भी होता है। २१ साल का लड़का हो गया या २१ साल की लड़की हो गई, तो उनको वोट देने का अधिकार मिल जाता है। यह भी नेचुरलाइजेशन कहलाता है। यह

अधिकार संविधान का दिया हुआ होता है। इसलिये इसे औपचारिक कहते हैं। संविधान अगर यह अधिकार न दे तो वह नहीं मिल सकता। यह औपचारिक नागरिकता इसलिये है कि यह दूसरे की दी हुई है। समाज ने विधिपूर्वक आपको यह अधिकार दिया है। यह नैसर्गिक अधिकार नहीं है। प्राकृतिक या जिसे ईश्वरदत्त कहते हैं, उस तरह का यह अधिकार नहीं है।

अब दूसरा उदाहरण लीजिये। हिन्दू लड़का है। जब उसे जनेऊ पहना दी गई तो वह द्विज बन गया। द्विज से मतलब है उसका दूसरा जन्म हो गया। मां की कोख से जन्म हुआ वह नैसर्गिक है। लेकिन जनेऊ दिलाने पर जो जन्म हुआ वह सामाजिक है। जैसे इधर नागरिकता है वैसे उधर द्विजत्व है। इसी तरह ईसाई और मुसलमान हैं। मुसलमान के घर जो बच्चा पैदा होता है वह है मुसलमान, लेकिन उसे मुसलमान धर्म की दीक्षा दी जाती है। उसकी विधि होती है। जिस दिन विधि-पूर्वक उस लड़के की खतना होती है उस दिन समझा जाता है कि वह मुसलमान हुआ। ये सारे के सारे मनुष्य के जो नाते हैं उनको आप हैसियत कहते हैं। हैसियत को अंग्रेजी में कैपेसिटी (Capacity) कहते हैं। एक आदमी से आप पूछिये कि गांधीजी को आप मानते हैं, तो वह कहेगा कि इनसानके नाते मैं उसे सारे इनसानों का सिरमौर मानता हूं, सबसे बड़ा इनसान मानता हूं, लेकिन मुसलमान के नाते एक अदने मुसलमान को गांधी से ऊंचा मानता हूं। ब्राह्मण से पूछिये कि आप रैदास को मानते हैं, कबीर को मानते हैं, नानक को मानते हैं, तो वह कहेगा कि इनसान के नाते, भक्त के नाते मैं इन तीनों को बहुत ऊंचा मानता हूं, लेकिन एक ब्राह्मण के नाते उन तीनों से अपने को ऊंचा मानता हूं। यह हैसियत होगई। इनसान के नाते इनसान की हैसियत से यह मानता हूं, और मुसलमान या ब्राह्मण की हैसियत से बिलकुल दूसरी चीज मानता हूं। दो हैसियतें होगईं, दो कैपेसिटी होगई।

जब मैं मनुष्य के नाते बोलता हूं तब एक प्राकृतिक मानव होता हूं। मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है मनुष्यता। पर नागरिकता जन्म-सिद्ध नहीं।

नागरिकता जन्म से प्राप्त तो होती है, लेकिन वह राज्य-संस्था की दी हुई है। समाज की दी हुई है। इसी तरह से इसलामियत, हिन्दुत्व, ईसाइयत–ये सारी की सारी जो सांप्रदायिक स्थितियां हैं, साम्प्रदायिक हैसियतें हैं, ये नैसर्गिक नहीं हैं। प्राकृतिक नहीं हैं। तो अंत में निचोड़ क्या निकला ? हम क्या करना चाहते हैं ? हम औपचारिकता की तरफ से वास्तविक मानवता की तरफ कदम बढाना चाहते हैं। यह लोकनीति की बुनियाद है।

लौकिकता का अर्थ

एक बात और समझ लें। लोग परलोक की बात करते हैं। हम कहेंगे कि हमें परलोक से मतलब नहीं है। जब मौका आयगा तब देखा जायगा। जल्दी नहीं है। दूसरा यह भी कह सकते हैं कि आसमान को लाकर धरती से मिलाओ। आसमान की बात अगर करनी है तो जमीन को भी आसमान बनाओ। यह सेक्यूलरिज्म (Secularism) कहलाता है। लोग इसे लौकिकता कहते हैं। लौकिकता से मतलब हम इस लोक की बात करते हैं। लौकिकता से मतलब यह नहीं कि हम किसी नियम को नहीं मानते। विलासी, भोगी आदमी लौकिक आदमी नहीं होता। लौकिक आदमी लोक की बात करता है। वह इहलोक में मानवता की बात करता है। परलोक की बात नहीं करता।

अब लोकनीति की दो बुनियादें होगई, दो व्याख्याएं होगईं। लोक कौन ? निरुपाधिक मानव। वह पहला लोक है। लोक शब्द में लोक का व्यक्ति कौन होगा, उसका घटक, इकाई कौन होगा ? उसकी इकाई है निरुपाधिक। जिसके पीछे कोई विशेषण नहीं लगा है, किसी तरह की उपाधि उसके साथ जुड़ी हुई नहीं है। इस निरुपाधिक मानवता की तरफ हमें जाना है।

लोकनीति का लक्ष्य

लोकनीति का लक्ष्य क्या है ? राजनीति का भी लक्ष्य था और लोकनीति का भी लक्ष्य है। राजनीति के लक्ष्य के दो पुराने प्रतीक ले

लें। वे नये नहीं हैं—एक सिकन्दर और दूसरा सीज़र। सिकंदर और सीज़र ने क्या कहा ? सारी दुनियां मेरी है, मेरी हथेली पर होगी। लक्ष्मण ने कहा था कि पृथ्वी मेरी हथेली पर होगी–कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊं। रामचन्द्रजी से कहा—यह परशुराम हमें धमकाता है, आपकी अनुशासन की देर है, इस सारी पृथ्वी को उठाकर गेंद की तरह उछाल दूंगा। यह एक दर्शन है। यह क्षत्रिय का दर्शन कहलाता है। उसे साम्राज्यवादी कहते हैं। यह राजवाद है, यह राजनीति है। सारी पृथ्वी को पदाक्रांत करूंगा, सारी पृथ्वी को अपने चरणों का भोग, दासी बनाऊंगा। सीज़र, सिकंदर, हैनीवाल हुए। हमारे यहां इस तरह के चक्रवर्ती हुए। चंद्रगुप्त हुआ, समुद्रगुप्त हुआ, चक्रधारी और छत्रधारी जितने थे उन सबकी यही आकांक्षा थी। उनके बारे में कहा जाता था–जो राजा संतुष्ट होगा वह नष्ट हो जायेगा। राजा को संतुष्ट नहीं होना चाहिये। संतुष्ट किसे रहना चाहिये ? ब्राह्मण को, क्षत्रिय को नहीं।

असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च नराधिपाः।

आज राजा की जगह राज्य आ गया है। एक गांव पाकिस्तान ले लेता है तो हम समझते हैं कि हमारी सारी इज्जत चली गई। पाकिस्तान की एक चप्पा भर जमीन अगर हिन्दुस्तान में आ जाती है तो पाकिस्तान अपनी शान के खिलाफ समझता है। जितनी ज्यादा जमीन पर कब्जा हो सके, उतनी ज्यादा जमीन पर राज्य कब्जा करना चाहता है। जमीन पर कब्जा करना राजनीति कहलाती है। जितनी जमीन पर कब्जा हो जाता है, उतनी जमीन पर जो लोग रहते हैं उन पर भी कब्जा हो जाता है। रतलाम किसी दिन मध्यभारत में था। तब किसका कब्जा था ? उन मंत्रियों का जो ग्वालियर में बैठते थे। अब रतलाम पर किसका कब्जा है ? उनका है जो भोपाल में बैठते हैं। धरती पर भी कब्जा हुआ और उस धरती पर रहनेवाले मनुष्यों पर भी कब्जा हुआ और यह जो कब्जा जमीन पर होता था सामंतशाही में ये सारे मनुष्य आसामी कहलाते थे। आसामी तो आपके यहां वे कहलाते हैं जो कर्जा लेते हैं

और वे भी आसामी हैं जो लगान देते हैं। मनुष्य आसामी बन जाता है। मनुष्य मनुष्य नहीं रहता।

अब ये दो तरह के विचार आपके ध्यान में आगये। एक विचार था। सिकंदर का और सीज़र का। अब सिकंदर से लेकर कहां तक विचार गया ? सिकंदर से लेकर ख्रुश्चेव तक आया, आइजनहावर तक आया। मध्य एशिया में किसका सिक्का चलेगा ? किसका प्रभाव रहेगा ? पूर्व में किसका प्रभाव चलेगा, पश्चिम में किसका चलेगा ? दुनियां में रूस का प्रभाव चलेगा या अमेरिका का ? यह सारा जो दर्शन है, दर्शन से मतलब देखने का तरीका, यह देखने का तरीका राजनेता के देखने का तरीका है। यह तरीका—पूरा का पूरा तरीका—राजनीति का तरीका है।

दूसरा विचार संतों का है। ईसा कहता था—मैं दुनियां पर कब्जा नहीं करूंगा, आप दुनियां बन जाऊंगा। मैं विश्व को अपने अधीन नहीं करूंगा। विश्व पर मेरा प्रभुत्व नहीं होगा, मैं ही विश्व बन जाऊंगा विश्वरूप बन जाऊंगा। विश्व को अपने कब्जे में कर लेना राजनीति है, स्वयं विश्वरूप बन जाना लोकनीति है।

दोनों के देखने में बहुत बड़ा अंतर हो गया।

एक संतों का तरीका कहलाता है और दूसरा तरीका राजाओं का कहलाता है। किसी ने पूछा—जमाने को कौन बनाता है। राजा बनाता है या संत बनाता है ? लोगों ने कहा—संत तो त्रिकालाबाधित होता है, संत किसी जमाने का नहीं होता, सब युग का होता है। तो फिर जमाने को कौन बनाता है ? राजा कालस्य कारणम्। तो वह संत उठा कबीर की तरह का। कह उठा क्या बात करते हो, तू जमाने का बनाने वाला है ?

मिट्टी का पुतला पाव पलक में ढरता है।

'सा रम्या नगरी'.... । वह बड़ी अच्छी नगरी थी। सामन्तों का चक्र था। महान् राजा था। बड़ा भारी राज्य था। बड़ी विधिवत् परि-

षद् थी। सुन्दर-सुन्दर स्त्रियां रनिवास में थीं। वे चारण थे, उनकी वे गाथायें थीं। वे उद्दण्ड राजपुत्र थे।

लेकिन क्या हुआ ? काल की गति में ये नामशेष हो गये। कोई नहीं रहा। खण्ड खण्ड हो गये। सामंतचक्र भी नहीं रह गया।

तो क्या कहते हो—राजा काल को बनाता है ? काल ही राजा को खा लेता है।

विरोध संतों ने खड़ा किया—तू यह मत कह कि तू काल को बनाने-वाला है। यह अन्तर क्यों पड़ा ? जो राजा था उसका दर्शन अलग था। जो संत था उसका दर्शन अलग था।

समाज-परिवर्तन कौन करेगा ?

आज हम क्या कहते हैं—जमाने को कौन बनायेगा ? राजा भी नहीं, संत भी नहीं। मनुष्य बनायेगा। निरुपाधिक मानव बनायेगा। संत क्यों नहीं ? इसलिये कि संत मानव-विमुख था। मानव-विमुख से मतलब ? संसार-विमुख, जगद्विमुख। संत किसे कहा जाता था ? उसे जिसने दुनियां से मुंह मोड़ लिया है। तो क्या लोकनेता बाबा बैरागियों का नेता होगा ? यह सवाल आपके सामने आयेगा। लोग जब आपसे बहस करने लगेंगे तो कहेंगे कि आप कहां की बात कर रहे हैं आसमान की। आप कहेंगे—इस पृथ्वी की कर रहा हूं, तो वह आपको दूसरा जवाब देगा कि इहलोक की तो कर रहे हो पर साधारण मनुष्य की नहीं। साधु संतों की बात कर रहे हो। क्या यह संतों की दुनियां होगी ? वह आपसे सवाल पूछेगा। उसको जवाब दीजिये कि हम जो लोकनेता का नाम ले रहे हैं वह साधु-संतों के लिये नहीं, सन्यासी और बैरागियों के लिये नहीं। इसका संकेत हमारे जितने पुराने शास्त्र हैं उनमें है। पुरानी रूढियों में भी है। अगर मैं सन्यासी हो जाऊं—भगवान नहीं करेगा कि ऐसा होगा, पर समझ लीजिये कि हो जाऊं तो क्या होगा ? मैं कोई गिरी, भारती या आनंद बन जाऊंगा, कोई शारदानन्द बन गया, कोई भावानन्द बन गया, कोई योगानन्द बन गया। फिर आप पूछिये कि आप कहां के हैं। कहीं के

नहीं। उसका कोई रिश्तेदार नहीं। उसने नाम ही बदल दिया। उसका कोई गांव नहीं। वह कहीं का निवासी नहीं है। उसका कोई अपना रिश्तेदार नहीं है। फिर उसकी मां भी जीवित हो और कल मां मर जावे तो उसको कोई सूतक नहीं। उसको कुछ करना नहीं पड़ता। उसे यह औसर-मौसर कुछ नहीं करना पड़ता। क्यों ? वह सन्यासी हो गया, नाम बदल गया। पुराने धर्मग्रन्थों की मर्यादा में कहते हैं कि इसकी सिविक डेथ (Civic death) हो गयी यानी लौकिक मृत्यु हो गयी। जो सन्यासी हो गया उसकी लौकिक मृत्यु हो गयी। अब जिसकी लौकिक मृत्यु हो गयी उसके लिये लोकनीति कहां रही ? लोकनीति बाबा-बैरागी या सन्यासियों के लिये नहीं। फिर किसके लिये है ? निरुपाधिक मानव के लिये है। तब संत के गुण निरुपाधिक मानव में आने चाहियें-यह इसका मतलब है।

अब मैं आपको लेजा रहा हूं एक एक कदम लोकनीति की तरफ। एक तरफ राजा था और दूसरी तरफ संत। जो संत था उसमें राजा की शक्ति नहीं थी और जो राजा था उसमें संत के गुण नहीं थे। जिस राजा में संतों के गुण हुये और जिस संत में राजा की शक्ति आयी वह अवतार माना गया। उसको फिर किसी ने संत भी नहीं माना और राजा भी नहीं माना। सांकेतिक शब्द है राम। वह देवता और अवतार हो गया। राम में साधुत्व भी है, और राजा की शक्ति भी है। लेकिन विश्वामित्र ? विधाता से कहा– मैं तेरे मुकाबले में दूसरा संसार रच कर बतला दूंगा। पर उस विश्वामित्र में अपने यज्ञ का रक्षण करने की शक्ति नहीं थी। दशरथ के यहां गया। दशरथ से कहा–अपने बेटे हमको दे दो। इतना बड़ा संत हुआ, उसकी इतनी बड़ी शक्ति बतलाते हैं कि उस त्रिशंकु को आसमान में टांक कर रख दिया। पर रावण का नाश करने की एक भी संत में ताकत नहीं थी। सब रावण के पलंग के पाये के नीचे दबे थे। यह वर्णन वाल्मीकि और तुलसीदास ने किया है। उन सब को राम की शरण लेनी पड़ी।

एक बात और समझ लें। संत साधु का नाम लेते ही हमारे देश में चमत्कार, ऋद्धि, सिद्धि का चित्र सामने आजाता है। हमारे यहां एक मंत्र वाला था, मंत्र फूकने वाला। हमारी कमर में बहुत दर्द हो गया। सहा नहीं जाता था। देहात में थे। अपनी सुसराल में। मातुल आकर कहने लगे कि मंत्र फुंका देते हैं। मंत्र फूंकने से दर्द चला जायगा। हमारे गांव में बड़े टोटकेवाले हैं। उनके टोटके से पेड़ के पेड़ सूख जाते हैं। आम का यह पेड़ देखिये। ऐसे ही सूख गया। फिर हम गांधी से कहेंगे—यह मंत्र पढ देगा तो वायसराय सूख जायगा, आपको कष्ट करने की, जेल जाने की और आंदोलन करने की जरूरत नहीं रहेगी। दूसरा मंत्र पढ देगा तो तमाम अंग्रेजों की फौज सूख जायगी। कम से कम उनकी कमर में दर्द तो होने ही लगेगा। दूसरे सज्जन आ गये थे चार साल पहले विनोबाजी के पास। कहते थे—यों हाथ किया पेड़े आगये, उधर किया केले आ गये। नारियल आ गये। मेवा-मिष्ठान्न आगया। फिर जवाहरलालजी की पंचवार्षिक योजना की देश को क्या जरूरत? बस, यों हाथ करेंगे और लोगों के पेट भरते चले जायेंगे।

लेकिन सिद्धियों से क्रांति नहीं होती। योग से सिद्धियां कुछ लोगों को मिल जाती हैं, योग इससे आगे हमारे यहां नहीं गया। कुछ व्यक्तियों को मुक्ति मिली, कुछ को रिद्धि सिद्धि मिली, पर समाज-परिवर्तन नहीं हुआ। लोकनीति व्यक्तिगत मुक्ति और सिद्धि के लिये नहीं है। समाज-परिवर्तन के लिये है। मानव-मात्र का स्तर ऊंचा उठाने के लिये है। हर मनुष्य का स्तर ऊंचा उठना चाहिये। इसलिये मैंने आपसे कहा कि अब जमाने को कौन बदलेगा? निरुपाधिक मानव बदलेगा।

निरुपाधिक मानव की शक्ति और प्रकृति

निरुपाधिक मानव में क्या शक्ति होगी? राजा की उसमें शक्ति होगी और संतों की प्रकृति होगी। उसकी तबियत संतों की तरह होगी। वह सबको अपना बना लेगा। विश्वरूप बनेगा। दिल भी इतना बड़ा होगा जितना बड़ा ब्रह्माण्ड। और दिमाग? दिमाग तो ब्रह्माण्ड से भी

बड़ा होगा। उसके दिल और दिमाग इस दुनिया से बड़े होंगे। इस दुनिया से बड़े अगर नहीं होंगे तो छोटा कद रह जायगा। छोटे कद के लोग लोकनीति की स्थापना नहीं कर सकते। जो खुद छोटा है, बोना है, वह क्या बड़ो बात करेगा ? यों शरीर का कद छोटा और बोना भले ही हो लेकिन दिल और दिमाग दोनों बड़े चाहिये।

आजकल क्या होता है ?

अन्तर्राष्ट्रीय संघ है, युनाइटेड नेशन्स आर्गनाइजेशन—यू० एन० ओ० (U. N. O.)। उसकी सभायें होती हैं। वहां आपको नहीं मालूम कि क्या है। बड़ा चमत्कार है। वहां ऐसे सुनने के यन्त्र लगे हैं कि आपकी तबियत हो रही है कि किसी का भाषण अपनी जबान में सुनें, तो वहां पड़े अमुक यन्त्र को आप अपने कान से लगा लीजिये। जिस भाषा में आप सुनना चाहें तो उस भाषा में भाषण सुनाई देगा। जवाहरलालजी हिन्दी में बोल रहे हैं और आप हिन्दी नहीं समझते हैं। आप उनके भाषण को फ्रेंच में सुनना चाहते हैं तो फ्रेंच वाला यन्त्र उठा लिया, उस गोलक को कान से लगा लिया तो जवाहरलालजी हिन्दी में बोल रहे हैं और आप उनका भाषण फ्रेंच में सुन रहे हैं। इतना चमत्कार है। पर यू० एन० ओ० में क्या भाषण सुनते हैं ? एक दूसरे की बुराई। दुनियां भर के भाषणों में एक दूसरे को दोष दिया जाता है। ख्रुश्चेव के भाषण में हमें मिलेगा कि—हम तो शांति चाहते हैं, पर आइजनहावर शरारत करता है। उधर आइजनहावर के भाषण हम सुनें तो ऐसा लगेगा कि हम क्या करें, पश्चिम में तो सब भले आदमी हैं, सब फरिश्ते हैं, पर रूस में इबलिस बैठा है। सारे के सारे ये शैतान और इबलिस वहां बैठे हैं रूस में। और यही गालियां हैं दुनियांभर की भाषा में। तुलसीदास को हिंदी और संस्कृत के सिवाय और कोई भाषा आती नहीं होगी। शायद थोड़ी बहुत उर्दू जानते होंगे। लेकिन बात कैसी बुलन्द कहते थे—

जड़ चेतन जग जीव सब ही राम मय

संसार में जितने जड़ चेतन जीव हैं उन सब को मैं राममय जानता

हूँ। क्यों ? मैं राममय हो गया हूं। इसे विश्वरूपवृत्ति कहते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व विश्वरूप हो जाना चाहिये। साधारण निरुपाधिक मानव कौन होगा जिसका व्यक्तित्व विश्वरूप हो गया है। सत्ता और राजा का मद उसमें नहीं होगा। यह जितना रह जायगा उतनी लोकनीति में कमी रह जायगी। आखिर आप राजा से क्या चाहते हैं ? एक ब्राह्मण का बेटा रामचन्द्रजी के राज्य में मर गया। वह अपने बेटे को लेकर गया उनके दरबार में और कहता है—रामचन्द्रजी, आपका राज कुराज है, सुराज्य नहीं।

'क्यों नहीं है ?' रामचन्द्रजी पूछते हैं।

'उलटा हो रहा है। बेटे के कंधे पर मैं जाता, पर मेरे कंधे पर बेटा जा रहा है। तुम्हारे राज्य में अन्याय हो रहा है।' उसने उत्तर दिया।

राजा से आप क्या चाहते हैं ? उसके राज्य में अन्याय न हो। अगर लोकराज्य हो तो आप लोगों से क्या चाहेंगे ? लोगों के जीवन में अन्याय न हो। लोकराज्य तब होता है जब लोकजीवन अन्याय-मूलक न हो। राजा का राज्य तब सुराज्य कहलाता है जब उसके राज्य में प्रजा सुखी हो, न्याय हो।

कहा है लक्ष्मण से रामचन्द्रजी ने—

जासु राजमहिं प्रजा दुखारी-सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

जिसके राज्य में प्रजा दुखी है वह राजा नरक का अधिकारी है। यह राजनेता के लिये कह दिया जहां राजा का राज्य था। पर जहां राजा का राज्य नहीं, और लोगों का राज्य है वहां ? उस हालत में अगर प्रजा दुखी है तो कहना यह होगा कि लोग ही दुराचारी हैं। लोक-नीति में न्यायमूलक समाज-स्थापना की तरफ लोगों का रुख होता है। नागरिकों का राज्य होगा वहां राजा के गुण नागरिकों में आ जाने चाहियें।

पहले नीति की स्थापना, न्याय की स्थापना साधु करते थे, धर्म की स्थापना संत करते थे, समाज का परिवर्तन राजा करता था। अब आप क्या कहते हैं ? समाज का परिवर्तन नागरिक करेगा। अगर समाज का परिवर्तन नागरिक करेगा तो धर्म की स्थापना भी नागरिक ही करेगा। अगर मजदूर यह कहता है कि राज मेरा होगा, किसान कहता है राज मेरा होगा। विद्यार्थी कहते हैं कि हम जमाने को बदलेंगे, वकील कहते हैं कि हम परिस्थिति को बदलेंगे और कुली कहता है कि हम जमाने को बदलेंगे तो ये सब के सब मिल कर राजा के अधिकारों का उपभोग करना चाहते हैं। राजा के अधिकारों का उपभोग नागरिक कब कर सकता है ? जब नागरिक में अधिकार तो हो राजा का, लेकिन दिल उसने संत का पाया हो अर्थात् लोकनीति में नागरिक सदाचार-प्रधान होते हैं।

दो पहलू

तो लोक शब्द के दोनों पहलू आप ध्यान में रखें।

पहला पहलू क्या है ? इकाई क्या होगी लोकनीति की ? मैंने उसे विभूति नाम दिया है। लोकनीति की विभूति कौन होगी ? कौन सा घटक होगा जिस पर लोकनीति का आधार रहेगा ? वह होगा निरुपाधिक मानव।

दूसरा है लोकनीति का क्षेत्र। क्षेत्र कौन होगा ? समस्त जगत्। अब इसमें हमारी मर्यादायें होंगी उतना मर्यादित क्षेत्र होगा। तुलसीदासजी ने क्षेत्र कौन सा कहा ? जब कहा तभी मानव-मात्र की बात कही है। तुलसीदासजी ने कहा यही कि-जड़ चेतन जग जीव सब ही राम मय। बात सारी दुनियां के लिये कहदी। लेकिन पहुंचे कहां तक ? हिन्दी समझने वाले लोगों तक। यह उनकी अपनी मर्यादा थी। इसे गांधी ने स्वदेशी धर्म कहा है। भारत में इसे राष्ट्र-धर्म कहा गया है। हमारे शरीर के साथ जितनी मर्यादायें आ जाती हैं वह राष्ट्र धर्म है। वह स्वदेशी धर्म है। तुकाराम मराठी में ही बोल सकते थे। कबीर

हिन्दी में। नानक पंजाबी में। चैतन्य बंगला में ही बोल सकते थे। ये मर्यादायें उनके शरीर की मर्यादायें थीं। उनके दिल और दिमाग की नहीं थीं। दिल और दिमाग उनका पूरे विश्व के बराबर था। शरीर की मर्यादायें कुछ आ जाती हैं। इसलिये क्षेत्र तो हमारा सारी दुनियां है, प्रयोग हमारे शरीर की जितनी मर्यादा होती है उतने क्षेत्र में होता है। शरीर की मर्यादायें अगर न हों तो उससे बड़े क्षेत्र हमारे लिये हो सकते हैं। आज जितनी मर्यादा है उतना क्षेत्र है।

आज दुनियां में लोकनीति का अध्ययन सभी राजशास्त्री कर रहे हैं। क्रांति की दृष्टि से इसका अध्ययन हो रहा है। उस दृष्टि से यहां कुछ बुनियादी बातें आपके सामने रखी हैं। मैं उनको दोहरा दूँ।

औपचारिकता से मानवता की ओर

पहली चीज मैंने यह कही कि अब मनुष्यों को औपचारिक हैसियत से मानवता की तरफ कदम बढ़ाना है। यह कौनसी मानवता है? मैं इसे प्राकृतिक मानवता नहीं कहता हूं, मैंने इसे निरुपाधिक मानवता का नाम दिया है। दोनों के अन्तर को समझा दूं। प्राकृतिक मानवता प्रिमीटिव ह्यूमैनिटी (primitive humanity) सबकी समान है। सांस्कृतिक मानवता सब की भिन्न है। अब हम क्या कहते हैं? सांस्कृतिक मानवता सब की समान हो। यह निरुपाधिक मानवता हुई। स्तर ऊंचा आ गया। वह प्राकृतिक स्तर था पहले। प्राकृतिक स्तर की जो आकृति थी वह नैसर्गिक थी। अब जो आकृति चाहिये वह मानवीय स्तर की, संस्कृत स्तर की आकृति है। इसे मैंने निरुपाधिक मानवता कहा। इसकी तरफ लोकनीति को ले जाना है। इधर जब तक रुख नहीं होगा, तब तक आपकी विश्व-सरकार, विश्व-नागरिकता, अन्तर्राष्ट्रीय सरकार, अन्तर्राष्ट्रीय नागरिकता और अन्तर्राष्ट्रीय संस्था इन सब की कोई योजना सफल नहीं होनेवाली है। उनकी सफलता के लिये हम को किस तरफ कदम बढाना होगा—दूसरी बात मैंने यह रखी। राजा की दिशा में नहीं, संत की दिशा में भी नहीं, संत के गुण और

राजा की शक्ति दोनों को अपनाकर नागरिकता की दिशा में कदम बढाना होगा। और नागरिकता के आगे फिर मानवता की तरफ। संत ने क्या किया ? सदाचार के नियम बतलाये। सदाचार का प्रतिपादन किया। लेकिन सदाचार के लिये समाज परिवर्तन किसने किया ? राजा ने किया। अब आप क्या चाहते हैं ? सदाचार का निर्णय भी आप करेंगे और सदाचार की स्थापना भी आप ही करेंगे। यही तो लोकराज्य कहलाता है।

नागरिक में राजा और संत का समन्वय

अगर नागरिक कहता है कि जमाने को मैं बदलूंगा और सदाचार की स्थापना में करूंगा तो जमाने को बदलने की शक्ति के साथ साथ सदाचार नागरिक जीवन में आना चाहिये। जो चीज आप राजा से चाहते हैं वह अब नागरिक में आनी चाहिये। जो चीज आप संत से चाहते हैं वह भी अब नागरिक में आनी चाहिये। तो क्या कोई संत नहीं रहेगा ? संत रहेगा, वह समाज से अतीत रहेगा। संत समाज से ऊपर रहता है। पहले भी लोग कहते थे कि धर्म-राज का रथ कहां चलता है ? धरती से चार हाथ ऊपर। संत धरती से हमेशा चार हाथ ऊपर चलेंगे। वे नागरिक नहीं होंगे। उनकी दुनियां में कोई रिश्तेदारी नहीं होगी। उनका वोट भी नहीं होगा। लेकिन साधारण नागरिक में साधुत्व होगा। साधुता के गुण होंगे और राजा की शक्ति होगी। इसके लिये दोनों को दो चीजें छोड़नी होंगी। कौनसी ? संत लोकोत्तर होता है। नागरिक लोकोत्तर नहीं होता। वह तो लोकनेता है न ? लोकनेता लोकोत्तर नहीं होता। और राजा ? राजा लोक को अपने अधीन करना चाहता है। सारे लोक पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। हुकूमत कायम करना चाहता है सारी दुनियां पर। जो दुनियां पर हुकूमत कायम करना चाहता है उस राजा को हुकूमत छोड़ देनी होगी और जो दुनियां से ऊंचा उठ कर विरक्त हो जाना चाहता है उस संत को विरक्तता छोड़ देनी होगी। ये दो चीजें नागरिक छोड़ेंगे। इसलिये मैंने आपसे कहा कि

दोनों की शक्ति उसमें आयगी। पहले जो शक्ति अवतार में होती थी वह शक्ति अगर जनता में होगी तो जनता समाज-परिवर्तन कर सकेगी। नहीं तो फिर जनता को भी किसी अवतार की आवश्यकता होगी।

दिल और दिमाग मानवता के नाप के हों

लोकनीति किस तरफ को जा रही है ? उसका आदर्श क्या है ? आज ही होगा—ऐसा कोई नहीं कहता, पर इस तरफ को जाना होगा। सारी लोकनीति को कदम जो बढाने हैं, इस तरफ को बढाने हैं। जमाने को कौन बदलेगा, लोक किसके हाथ होगा ? निरुपाधिक मानव के साथ। निरुपाधिक मानव के कौन से लक्षण होंगे ? उसका दिल और दिमाग मानवता के नाप के होंगे। किसी देश के नाप के नहीं, किसी जाति-संप्रदाय के नाप के नहीं। आज मुसलमान का दिल अपने संप्रदाय के नाप का है। ब्राह्मण का दिल अपनी जाति के नाप का है और भारतवर्ष के आदमी का दिल अपने देश के नाप का है, इंग्लैंड के आदमी का दिल इंग्लैंड के नाप का हैं, रूस के आदमी का दिल कम्यूनिज्म के नाप का है और अमेरिका के आदमी का दिल अमेरिकनिज्म के नाप का है। होना क्या चाहिये ? मानवता के नाप के दिल और दिमाग होने चाहियें। तो इतना बड़ा आदमी बनेगा, आसमान के बराबर होगा ? नहीं, साढे तीन हाथ का ही होगा। साढे तीन हाथ का होगा तो क्या शरीर की मर्यादायें नहीं होंगी ? शरीर की मर्यादायें होंगी। शरीर की मर्यादायें व्यापकता के लिये प्रतिकूल नहीं होंगी। उदाहरण तुलसीदास का दिया। हिन्दी में बोले, लेकिन मानव की बात कही। दूसरा उदाहरण यू० एन० ओ० का दिया। राष्ट्र संघ में जहां लोग बैठते हैं दुनिया भर की भाषायें जानते हैं, पर दिल ? अपने अपने देश के नाप के हैं। किसी का दिल बड़ा नहीं है। दुनियां भर की भाषायें जानकर भी दिल छोटा रह सकता है। तुलसीदासजी कहां घूमे थे ? घूमे भी होंगे तो अयोध्या, काशी और प्रयाग तक घूमे होंगे। एक आध बार चले गये होंगे तो रामेश्वर तक घूम आये होंगे। और आज ? यहां तो २४ घंटों में अमे-

रिका में घूम कर चले आते हैं। और बात कौनसी करते हैं ? या तो सौदे की या राजनीति की। दुनियां भर में घूमने के बाद भी दिल और दिमाग तो छोटे ही रह जाते हैं। पहले थोड़े घूमते थे, पर दिल और दिमाग इतना बड़ा रह जाता था।

शरीर की मर्यादाओं से मनुष्य की भावना और संस्कृति निर्धारित या मर्यादित नहीं होती। इसे गांधी ने स्वदेशी कहा। दूसरों के स्वदेशी धर्म और गांधी के स्वदेशी धर्म में बहुत बड़ा अन्तर है। इसमें राष्ट्रधर्म की मर्यादायें आ जाती हैं। मर्यादायें अलग चीज हैं और सीमा बांध देना—कैद कर देना अलग चीज है। मर्यादा और सीमा में अन्तर है। सीमा बंधन-कारक होती हैं। मर्यादायें सिर्फ हमारी शक्ति को बतलाती हैं। वह बढती चली जाती हैं। एक उदाहरण दे दूं। यहाँ पर गैस की बत्ती जल रही है। अब इन दीवारों से बाहर उसकी रोशनी नहीं जा सकती। क्यों ? दीवार ने बांध दिया है। यह सीमा है। लेकिन मैदान में एक मोमबत्ती जल रही है। उसकी रोशनी भी एक दायरे से आगे नहीं जाती। लेकिन वह उसकी विशिष्ट तैयारी है। मर्यादा है। उसको बांधा नहीं है किसी ने। उतनी मर्यादा उसकी है। जितनी शक्ति बढती जावेगी, मर्यादा उतनी फैलती जायगी। यहां शक्ति बड़ी है, पर मर्यादा नहीं बढती जब तक दीवार को भेद कर रोशनी नहीं जाती। यह सीमा और मर्यादा का अन्तर है।

शरीर में मर्यादायें होती हैं। शारीरिक मर्यादाओं के साथ जो आता है उसे स्वदेशी धर्म कहते हैं। वह सीमित नहीं करता। तो अब कहां जाना है ? अब हमको सदस्यता से नागरिकता की तरफ जाना है और आगे नागरिकता से मानवता की तरफ जाना है।

[२]

मैं यह कह रहा था कि आज मनुष्य का व्यक्तित्व कुछ हैसियतों में बंट गया है। अब हम क्या चाहते हैं ? एक बार व्यक्तित्व को फिर से

समग्र बनाना चाहते हैं। साबित इन्सान कैसे बने ? मैंने आपसे यह कहा कि लोकनीति की बुनियाद क्या होगी, लोकनीति की विभूति कौन होगा, किसमें लोकनीति दिखेगी, उसका स्वरूप कौनसा होगा। तो वह निरुपाधिक मानव होगा। यहां निरुपाधिक से मतलब इतना ही है कि जो किसी संप्रदाय, राष्ट्र या राज्य की सीमाओं को नहीं मानता। अपने व्यक्तित्व की मर्यादाओं को वह समझता है। मर्यादायें बढ़ सकती हैं, पर सीमाओं को बढ़ाते हैं तो साम्राज्य हो जाता है। जैसे बुद्ध का अनुशासन जापान में भी है, चीन में भी है, ब्रह्मा में भी है और लंका में भी है। लाखों जापानी, चीनी, तिब्बती सारे बुद्ध के अनुशासन को मानते हैं। बुद्ध के व्यक्तित्व की, विभूति की मर्यादा व्यापक हो गई, फैल गई। अगर कल हमने यह सोचा कि जहां जहां बौद्ध धर्म है वे सारे देश भारत में शामिल हो जाने चाहियें तो हम साम्राज्यवादी बन जायेंगे। राज्यवादी बन जायेंगे। इसलिये इन दो चीजों का फरक आपके सामने रखा। शरीर की मर्यादाओं को हम बढ़ाते हैं, संभालते हैं, तो वह लक्ष्मण की रेखा होती है। उसमें से हम संकीर्ण नहीं बनते। लेकिन देश के विस्तार को बढ़ाते हैं या बढ़ाना चाहते हैं तो साम्राज्यवादी बन जाते हैं।

लोकनीति की विभूति

तो अब यह विभूति कौन होगा ? वह इनसान, वह मनुष्य, वह आदमी जिसका व्यक्तित्व बंटा हुआ न हो। यह कैसे बंट जाता है ? एक मिसाल दूं। जयपुर में या जोधपुर में यह मिसाल नहीं लूंगा। यहां लेलूंगा, क्योंकि आप मेरे साथ बैठ कर सोच सकते हैं और आप भी मुझे गलत नहीं समझेंगे। हाईकोर्ट का झगड़ा जयपुर और जोधपुर में चल रहा है। अब यहां जयपुर वाले क्या कहते हैं ? हमारे यहां एक बेंच रहने दो। जोधपुर वाले क्या कहते हैं ? पूरी अदालत हमारे यहां हो। अब थोड़ी देर के लिये समझ लीजिये कि मेरे साथ जवाहिरलालजी परसों आते हैं, यहां से मैं जोधपुर जाता हूं, और वे मेरे साथ रहते हैं। जोधपुर के आदमी क्या कहेंगे ? यह कहेंगे कि यह मकान तो

आपका ही है, आप ठहर सकते हैं। इस चारपाई पर मैं सो सकता हूँ ? तों वे कहेंगे कि यह तो आपकी ही है, आपके लिये ही बनी है। तो मकान भी आपका, चारपाई भी आपकी और यह बरफी भी आपकी और जोधपुर की फीणियां भी आपकी। और हाईकोर्ट की बात कहूंगा तो कहेंगे कि आप जोधपुर के हैं या जयपुर के ? झगड़ा शुरू होता है यहां से। इस पर एकदम झगड़ा शुरू हो जायगा। वे कहेंगे कि आपकी हमारी मैत्री के नाते हमारा जो कुछ है सब आपका है। पर जोधपुर के नागरिक के नाते हम हम हैं आप आप हैं। राजा दशरथ और वशिष्ठ दोनों एक ही माने जाते थे। कहा जाता था—यूयं वयं वयं यूयं—हम तुम और तुम हम। व्याकरण हमारे लिये कुछ चीज नहीं। यहां मध्यम और उत्तम पुरुष में कोई फरक नहीं। तुम और हम में कोई भेद नहीं। पर अब क्या हुआ ? यूयं यूयं वयं वयं—तुम तुम रह गये और हम हम रह गये। नागरिक के नाते जोधपुर वाले जोधपुर के हैं, और जयपुर वाले जयपुर के हैं। मनुष्य के नाते दोनों एक हैं। दोनों हैसियतें यहां एक हो गयीं। नागरिक के नाते लड़ाई करते हैं और मनुष्य के नाते गले मिलते हैं। तो जवाहिरलालजी और जोधपुर के वकील साहब दोनों गले मिल रहे हैं। क्यों ? दोनों एक दूसरे के मित्र हैं। पर इतने में दिमाग में बात आ गयी कि हमारा तो हाईकोर्ट के लिये झगड़ा होरहा है तो एक दूसरे के गले ही दबा देंगे। याने गले मिलने गये और गले दबाने लगे। एक चीज याद आगई नागरिकता की हैसियत। एक ही आदमी दो हैसियतों में होता है तो उसका रुख बदल जाता है और रुख बदल जाता है तो सदाचार और सभ्यता के नियम अलग अलग हो जाते हैं। व्यक्ति का नियम क्या है—स्वार्थ छोड़ो। नगर के लिए क्या नियम बना लिया ? स्वार्थ को ही रखो। अच्छा नागरिक कौन है ? जो अपने नगर के स्वार्थ को देखता है, लेकिन अच्छा मनुष्य कौन है ? जो अपने स्वार्थ को नहीं देखता। मनुष्यता और नागरिकता में झगड़ा हो गया। दो हैसियतें एक दूसरे के विरोध में खड़ी हो गयीं। जहां हैसियतें विरोध

में खड़ीं नहीं होतीं वहां कोई हर्ज नहीं। लेकिन जहां दो हैसियतों में झगड़ा होता है, विरोध पैदा हो जाता है वहां सदाचार के नियम भी विरुद्ध हो जाते हैं। बिल्कुल दो नियम अलग अलग हो गये। वैसे दो हैसियतें हर आदमी की हैं। हर आदमी अपने बेटे का बाप है तो अपनी बहन का भाई है। तो वह अपनी मां का बेटा भी है। इसमें कोई विरोध नहीं है। कोई झगड़ा नहीं है। लेकिन मेरी नागरिकता में और मानवता में विरोध पैदा हो जाता है। तो अब इसमें से आप लोकनीति में तरजीह किसको देंगे? श्रेयष्कर किसको समझेंगे। मानवता को। नागरिकता गौण होगी, मानवता प्रधान होगी। राष्ट्रीयता गौण होगी, मानवता प्रधान होगी। निरुपाधिक मानव मानवता की तरफ जायेगा। लोकनीति में हमारी नागरिकता गौण होगी और हमारी मानवता प्रधान होगी। यह लोकनीति का नियम मान लीजिये।

सदाचार का एक ही पैमाना हो

दूसरी चीज है सदस्यता। कल्पना कीजिये कि राजस्थान सरकार एक लाख रुपया दान देना चाहती है। अब उसके सामने सवाल है कि शिवदासपुरा को दान दिया जावे या खादीबाग को। एक तरफ जवाहिर-लालजी बैठे हैं और दूसरी तरफ रामेश्वर अग्रवाल बैठे हुए हैं। हरिभाऊ उपाध्याय जवाहिरलालजी से पूछते हैं—आपका क्या कहना है। जवाहिरलालजी कह देते हैं—खादीबाग को दे दीजिये। त्रिलोकचन्द कहता है कि क्या प्रतिनिधि ऐसे होते हैं? ये किस काम के प्रतिनिधि हैं? हमको पहले पता होता तो इनको डेप्युटेशन में नहीं भेजते। हम किसी होशियार आदमी को भेजते और होशियार से मतलब रहता है अपना उल्लू जो सीधा करे। जो अपनी बातों से सौदा करके आते हैं उनको आप होशियार बतलाते हैं। जवाहिरलालजी अगर अपने लिये कह देते या यह कहते कि कि त्रिलोकचन्द की दिया जाय तो आप कहते ये बड़े स्वार्थी आदमी हैं, क्यों नहीं खादीबाग को दे दिया? आखिर वे एक लाख रुपया छोड़ नहीं सके। पर संस्था के लिये नहीं मांगा तो

उसके लिये कहते हैं कि ये आदमी संस्था का हित नहीं चाहते हैं। हो गई न दो नीतियां ? सदाचार के दो पैमाने ? नीति के दो अलग अलग पैमाने ? मनुष्य का व्यक्तित्व बंटता कब है ? जब मनुष्य की हैसियत सदाचार के दो अलग अलग पैमाने बना लेती है। हम एक पैमाना चाहते हैं। सारी हैसियतों के लिये सदाचार का एक पैमाना होगा। इसलिये नागरिकता और सदस्यता से मानवता श्रेष्ठ मानी जानी चाहिये। लोकनीति मानवधर्म की स्थापना के लिये है। लोकनीति लोकराज्य की स्थापना के लिये नहीं है। लोकराज इसका साधन है, औजार है। जैसे बहुत से औजार होते हैं उनमें से लोकराज एक औजार है। लेकिन लोकनीति लोकराज्य से बड़ी है। अंत में लोकनीति लोकराज को भी समाप्त कर देना चाहती है, सिर्फ राजा के राज्य को ही नहीं, नागरिक के राज्य को भी समाप्त करना चाहती है।

राज्य को समाप्त करने से मतलब क्या है ? दो मनुष्य के बीच तीसरे की जरूरत न रहे। और कोई मतलब नहीं है। जहां दो मानव मिलते हैं, वहां उनके बीच यानी उनको झगड़े से बचाने के लिये तीसरे की जरूरत न हो। जब आप यहां इस गांव में, देहात में और जयपुर जैसे शहर में जाकर किसी से भी पूछिये, किसी भले आदमी से पूछिये कि जहां दो आदमियों के बीच में तीसरे आदमी की जरूरत होती है उन दो आदमियों को कोई भला आदमी कहता है ? उनको कोई पास में बैठने देगा ? आपके छोटे भाई में और आप में लगातार झगड़ा हो तो मैं क्या कहूंगा ? 'तू इस कोने में बैठ और तू उस कोने में बैठ'। अब अलग अलग कोने में बैठने पर भी एक दूसरे की तरफ देखकर मुंह बनाते हों तो वह कहता है कि तू इसकी तरफ मत देख। एक दूसरे की तरफ नहीं देखे यह मनुष्य को करना पड़ता है। यह ऐडमिनिस्ट्रेशन (Administration) कहलाता है। मनुष्य का क्या काम हुआ ? तुम एक दूसरे की तरफ मत देखो और मुंह मत बनाओ। मैं कहता हूं– यह कोई काम है ? मैं यह चाहता हूं कि मनुष्य यहां बैठा न रहे, दूसरा

काम करे और बैठे बैठे दूसरे के साथ न लड़े। दो आदमियों के बीच तीसरे की जरूरत नहीं होनी चाहिये। इसे शासन मुक्ति कहते हैं और शासन मुक्ति कोई ऐसी बड़ी चीज नहीं है। आज सारी दुनियां इसी तरह रह रही है। गांवों में जिन दो पड़ोसियों के मकान एक दूसरे के पड़ोस में है उनको क्या अपने मकान पर पहरा देना होता है? हर आदमी का मकान दूसरे के पड़ोस में है। बाजार में दूकानें एक दूसरे के पड़ोस में हैं। रास्ते में आदमी एक दूसरे से सट कर चलता है। इसमें कहीं दो आदमियों के बीच तीसरे की जरूरत होती है? दो आदमियों के बीच में तीसरे की जरूरत होती है तो आप उसे झगड़ा कहते हैं। शासन-मुक्त क्या कहते हैं? दुनियां में झगड़ा न हो। बिल्कुल बेवकूफी की मांग है कि झगड़ा न हो। झगड़े का मौका न दे। बस इतनी सी बात है। एक बार राजा भोज बैठा हुआ था अपने दरबार में। कालिदास आया। तो कालिदास से कहा—ओ मूर्ख। कालिदास ने कहा—मुझे मूर्ख क्यों कह रहे हो? उसने कहा—मैं अपनी पत्नी से बात कर रहा था, दो के बीच में तुम आये इसलिए मूर्ख कहा। मैं तो दरबार में आया हूं—

द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन् किं कारणं भोज भवामि मुर्खः।

मैं दो में तीसरा नहीं बनता हूं तो बेवकूफ क्यों कहते हो? बेवकूफ वह है जो दो के बीच तीसरा बनता है। हमारी मांग इतनी है कि इस बेवकूफी की जरूरत दुनियां में कम हो। इस मूर्खता की आवश्यकता कम हो। जहां दो आदमी मिलते हैं वहां तीसरे की जरूरत न हो। मनुष्य का स्नेह संबंध ऐसा हो जिसके बीच में तीसरी शक्ति की आवश्यकता न हो। कोई चाहता है कि पति और पत्नी के बीच तीसरा हो। दो के बीच तीसरा यह तो व्यर्थ का तत्व है उस तत्व को समाज से हम कम करना चाहते हैं। यही लोकनीति कहलाती है। राजा क्या चाहता है? हर एक के जीवन में मेरा प्रवेश हो। हर एक के जीवन में राज्य का प्रवेश हो यह राजनीति। व्यक्ति के जीवन में राज्य का प्रवेश कम हो यह लोकनीति।

सबसे श्रेष्ठ सरकार कौनसी ?

सब से पहले इस बात को कहा अमेरिका में थोरो ने। हेनरी थोरो एक फक्कड़ तबियत का आदमी था। जैसी आपकी कुटिया बनी है ऐसी कुटिया बना कर रहा वाल्डन नामक क्षेत्र में। वाल्डन नामक एक सुन्दर किताब भी लिखी जिसमें उसने अपने एकांत के अनुभव लिखे हैं। दूसरी किताब लिखी उसने सविनय अवज्ञा-सिविल डिसओबिडियन्स (Civil Disobedience)। उस किताब में एक छोटा सा निबंध है। उसने कुछ सूत्र लिये। सूत्र पुराने हैं। शासन सब से अच्छा कौन सा है ? जो कम से कम शासन करता हो। सरकार कौन सी अच्छी है ? जो हुकूमत कम से कम करती हो। पुरानी बात है, कहावत पुरानी है। थोरो की नहीं है। थोरो ने उसमें एक बात जोड़ दी। सब से अच्छी सरकार वह है जो कम से कम हुकूमत करती है लेकिन अच्छी से अच्छी सरकार से श्रेष्ठ सरकार वह है जो बिलकुल हुकूमत नहीं करती। जो सरकार हुकूमत ही नहीं करती वह अच्छी से अच्छी सरकार है। राजा चाहता है कि मेरा दखल हो, हर बात में मेरा दखल रहे। लोकनीति चाहती है कि राज्य का दखल कम से कम बातों में हो। यह राजनीति और लोकनीति में बुनियादी फरक है। इसलिये लोकनीति हमको किस तरफ ले जायगी ? शासन-मुक्त समाज की तरफ। जहां व्यक्ति के जीवन में– व्यक्ति के जीवन का मतलब मैंने आपको बतला दिया कि एक व्यक्ति का दूसरा व्यक्ति साथ जो सलूक है, एक इनसान का दूसरे इनसान के साथ जो ताल्लुक है, संबंध है उसमें राज्य का दखल कम से कम हो। यह शासन-मुक्ति कहलाती है। इस तरफ आपको कदम बढ़ाना है। इसलिये आप कहते हैं कि नागरिकता और सदस्यता से मानवता श्रेष्ठ हो। मानवता के नियम नागरिकता के लिये लागू होंगे, सदस्यता के लिये भी लागू होंगे।

गांधीजी से पूछा कि तुम्हारी कल्पना का भारत जिस दिन बनेगा वह भारतवर्ष कैसा होगा ? तुमको कौन से भारतवर्ष में गौरव होगा ?

गुरुदेव रवि ठाकुर से भी पूछा—किस भारतवर्ष में तुम को गौरव होगा ? तो एक कवि था दूसरा संत था। लेकिन दोनों ने जवाब एक ही दिया। भाषा एक की साहित्यिक थी दूसरे की सीधी साधी। पर जवाब एक था—आज तक भगवान के इस संसार में ऐसे व्यक्ति तो पैदा हुये हैं जिन्होंने अपने आपको दूसरे व्यक्ति के हित के लिये समर्पित कर दिया हो, पर ऐसा राष्ट्र दुनियां में अभी तक नहीं हुआ जिसने दूसरे राष्ट्र के हित के लिये अपनी आत्माहुति दे दी हो। भगवान करे भारत ऐसा राष्ट्र बने। अब यह राष्ट्रीयता की एक अलग कल्पना हो गई। सिकंदर की कल्पना नहीं रही और यह बुद्ध और ईसा की भी कल्पना नहीं है। यह गांधी की कल्पना है। यह लोकनीति है। बुद्ध और ईसा की लोक-नीति नहीं है। बुद्ध और ईसा आध्यात्मिक, राम और कृष्ण आध्यात्मिक और पारलौकिक थे। लेकिन गांधी और रवि ठाकुर संसार में दो व्यक्ति ऐसे हुये हैं जो यह कहते हैं कि भगवान, हम ऐसे राष्ट्र का स्वरूप देख रहे हैं जो दूसरे के हित के लिये अपनी आहुति चढ़ा दे। दुनियां के हित के लिये अपनी आहुति चढ़ा दे। ऐसा राष्ट्र क्या दुनियां में हो सकता है ? आज तक तो नहीं हुआ। लेकिन हमारी तमन्ना है कि भारतवर्ष ऐसा राष्ट्र बने। हमारे इन दोनों महापुरुषों ने ऐसा ही कहा। मानवता के मूल्यों को राष्ट्रीयता और नागरिकता दोनों के लिये लागू करें।

संस्थायें खोलो। जितनी संस्थायें बनाओ सब की आहुति दे दो अंत में। गांधी ने गांधी सेवा संघ की आहुति दे दी। चरखा संघ का नव संस्करण किया। आश्रम जितने बनाये तोड़ दिये। सारी संस्थाओं की लोक कल्याण के लिये आहुति दे दी। और उस दिन चालीस गांव में विनोबा ने कहा सर्व सेवा संघ के व्यापक होने का मतलब ही यह है कि वह जनता में विलीन हो जाये। उसका विलीन होना ही व्यापक होना है, गंगा का समुद्र में समा जाना है। लोक-जीवन में उसके गले मिल जाना, समा जाना है। संस्था अलग रहे और उसका डील डौल भारी हो जावे, पर वह व्यापक नहीं बन सकती।

इसको समझने की जरूरत है। थोड़ी देर के लिये फर्ज कीजिये कि राजस्थान में तीन संस्थायें बनीं—एक राजपूत मंडल, दूसरा जाट मंडल और तीसरा मारवाड़ियों का यानी वैश्यों का मंडल। तीन संस्थायें राजस्थान में बनीं। अब उनमें सदस्यता किसमें अधिक होगी ? जाट मंडल की। तो वह पूछता है कि जाट मंडल की कितनी सदस्यता है, कितने उसके सदस्य हैं ? जाट मंडल के सदस्य दस लाख हैं। तुम्हारे राजपूत मंडल के ? सात लाख। मारवाडी वैश्य मंडल के ? पांच लाख। और जवाहिरलाल जैन के सर्वोदय मंडल के ? पचास। पचास, यह भी कोई मण्डल है ? कहां दस लाख और कहां पचास ? अब उनमें मुझे बतलाइये व्यापक कौनसा है ? जिसका डील-डौल बड़ा है वह व्यापक है या यह पचास व्यक्तियों वाला ? श्रेष्ठ मंडल कौनसा है ? जिसमें सब शक्तियां शामिल हो सकती हों वह व्यापक है। उसका डील-डोल चाहे छोटा हो। जिसमें सब शामिल नहीं हो सकते उसका डील-डौल चाहे जितना बड़ा हो वह व्यापक नहीं है, वह संकीर्ण है। राम का आकार छोटा है, लेकिन राम का व्यक्तित्व विश्व-व्यापक है। रावण का आकार बड़ा है, लेकिन रावण का व्यक्तित्व सिर्फ लंका-व्यापक है। दोनों में अंतर बहुत बड़ा है। तो अब आप लोगों की समझ में आ जावेगा जब मैं यह कहता हूं कि शरीर की मर्यादा तो होगी लेकिन उसका व्यक्तित्व व्यापक होगा। हमारे नागरिक की शरीर-मर्यादा होगी लेकिन उसका व्यक्तित्व व्यापक होगा।

सदस्यता में यह चीज नहीं रहती। सदस्य अगर आपकी पार्टी का सदस्य है, आपकी जाति का सदस्य है—तो सदस्य है नहीं तो, अगर आपकी जाति का नहीं है तो जैसा आप कहते हैं वह हमारा नहीं है। कांग्रेस कमेटी में जाकर पूछिये कि क्या जवाहिरलाल जैन आप लोगों के हैं ? तो कहेंगे, हां एक दो साल पहले तक हम लोगों के थे, अब नहीं रहे। गुजर गये ? नहीं, गुजर नहीं गये। उन्होंने हमारी पार्टी छोड़ दी। पार्टी से बाहर तो हैं ? पर हमारे लिये तो नहीं हैं। जब तक पार्टी में हैं वे हमारे लिये

जीवित हैं, पार्टी में नहीं हैं तो जैसे हैं वैसे नहीं हैं। हमारे लिये तो रहे ही नहीं। जो हमारे सदस्य हैं वे हमारे हैं, जो हमारे सदस्य नहीं हैं वे हमारे नहीं हैं। इस तरह से संस्था मनुष्य के व्यक्तित्व को बांध देती है, और बांध ही नहीं देती, बल्कि जकड़ लेती है। मनुष्य के व्यक्तित्व को जकड़ लेती है इसलिये हमको हमेशा संस्था से ऊपर रहना चाहिये। सारी संस्थाओं और संगठनों से ऊपर रहना चाहिये। संस्था और संगठन आदि साधन हैं, लेकिन मनुष्य उनसे ऊपर है। तो हम संस्था-संगठन के लिये भी कौन सा नियम लागू करेंगे ? जो नियम मनुष्यता के हैं।

तीन प्रकार की संस्था

तीन तरह की संस्थायें आज दुनियां में हैं। कुछ संस्थायें धार्मिक हैं, कुछ सैनिक हैं और कुछ संस्थायें वैधानिक हैं। जितनी धार्मिक संस्थायें चलती हैं सब ग्रंथ, मंदिर यानी देवता या गुरू—इन तीन के आधार पर ही चलती हैं। इसलिये ये व्यापक नहीं हो सकते। धार्मिक संस्थायें सांप्रदायिक बन जाती हैं, व्यापक नहीं। ये या तो ग्रंथों के आधार पर चलेंगी। उन ग्रन्थों को जो मानते हैं वे हमारे हैं। उन ग्रंथों को जो नहीं मानते हैं वे हमारे नहीं हैं। जिस दिन कश्मीर में प्लेबिसाइट होगा उस दिन क्या नारा होगा ? क्या कल्पना आप करते हैं ? मुसलमान कहेंगे जो लोग कुरान और ईमान और मुहम्मद को मानते हों वे पाकिस्तान की तरफ राय देंगे। और जो लोग गीता को मानते हैं वे हिंदुस्तान की तरफ राय देंगे। बस, यह आपको मुख्य डर है कि कहीं ऐसा हुआ तो वे तमाम अल्लाहो अकबर कह कर कुरान की तरफ राय देंगे। कुछ ग्रंथनिष्ठ हैं। कुछ देवता-निष्ठ होते हैं और कुछ व्यक्ति-निष्ठ, गुरू को मानने वाले। फौजी संस्थायें जितनी होती हैं वे संस्थायें भी व्यक्ति-निष्ठ होती हैं। एक सेनापति को मान लिया। वहां पर सेनापति के सामने कोई हील-हवाला नहीं। जो सेनापति कहेगा वही करना होगा। सब धान बाईस पंसेरी। एक ही भाव सब इनसान देखे जाते हैं। अब थोड़ी देर के लिये समझ लीजिये कि त्रिलोकचन्द को फौज में भरती होना है तो

वहां क्या नापेंगे ? उसका शरीर बाहर से नापते हैं। भीतर कुछ नहीं देखेंगे। भीतर अच्छा बुरा जैसा भी हो कुछ हर्ज नहीं। बाहर से इतना इन्च लंबा चौड़ा है बस ठीक है। छाती में क्या भावना है इसका कुछ नहीं, जितनी चौड़ी बाहर से चाहिये, वह है तो बस ठीक है, काफी है। ऊंचाई तबियत की चाहे जितनी हो, पर कद इतना ऊंचा हो बस यह काफी है। हो गया भरती। सब चल रहा है। सब तख्ते की तरह मालूम हो रहे हैं। सब की छाती वगैरह एक तरह की है। सब की नाक एक सीध में है। सब के कदम एक दूसरे से मिल रहे हैं। यह रेजिमेण्टेशन (regimentation) कहलाता है।

इस तरह का रेजिमेण्टेशन दुनियां में आता ही है सभ्यता के साथ। लेकिन यह शुरू हुआ धार्मिक संस्थाओं से। इसको शुरू किया धार्मिक संस्थाओं ने। सारे मुसलमानों की दाढी एक सी हो, सारे सिखों के साफे और केश और कड़ा कच्छा और कंघी ये पांच चीजें हर सिक्ख के पास होनी ही चाहिये। हर ब्राह्मण के चोटी के आस पास का घेरा होगा और वह गाय के खुर के बराबर होगा। उसकी जनेऊ में तीन धागे होंगे। यह जो रेजिमेण्टेशन है वह फौज से नहीं आया। पहले यह आया धर्म से। शुरू किया धार्मिक लोगों ने। बाद में वह फौज में आया। फौज में वर्दी आयी, एक नाप के हथियार आये। लेकिन इससे पहले यज्ञ में आया–कि यज्ञ में सुवा कितना बड़ा हो, चमचा कितना बड़ा हो, समिधा की लम्बाई चौड़ाई कितनी हो, घी कितना डाला जाय, घी डालने की कड़छी कितने नाप की हो, यह सब यज्ञ वालों ने शुरू किया। वह चीज सेना में सब से बाद में आयी। तो रिचुएलिज्म (ritualism) और फार्मेलिज्म (formalism) औपचारिकता और वैधानिकता–दोनों आयी धर्म में से। वे सैनिकता में दाखिल हो गयीं। सेना में आकर सारी की सारी चीजें दाखिल हो गयीं। अब एक तीसरी तरह की संस्था जिसे वैधानिक संस्था कहते हैं वह कानस्टिट्यूशनल–याने विधान पर चलनेवाली होती है। दोहरा दूं, तीन तरह की संस्थायें–एक धर्मवादी

और दैववादी संस्था। दूसरी सैनिकवादी संस्था और तीसरी कानस्टिट्यूशनल या विधानवादी संस्था।

विधानवादी संस्थाओं में क्या होता है? कांग्रेस के संविधान में खादी के बारे में नियम था। कांग्रेस की कार्यकारिणी का सदस्य कौन हो सकता है और वोट कौन दे सकता है? वह जो आदतन खादीधारी हो। आदतन खादी बरतता हो। इतना ही था। एक सज्जन बैठे हुए थे। दूसरे सज्जन खड़े हुए। अध्यक्ष से कहा—यह वोट नहीं दे सकते। क्यों नहीं? ये तो साहब मिल की धोती पहन कर आये हैं। टोपी भी उनकी विदेशी है। फिर यह वोट कैसे दे सकते हैं? यह आदतन खादीधारी नहीं है। बैठे हुए सज्जन खड़े होकर जवाब में बोले—मेरा कुरता खादी का है।

कुरता होने से आदतन खादीधारी कैसे होते हैं?

कुरता रोज पहनता हूं। और आदतन क्या होता है? रोज कुरता पहन रहा हूं और आप कहते हैं आदतन खादीधारी नहीं हूं। मैं आदतन खादीधारी हूं।

तुम्हारी धोती तो मिल की है?

इसमें लिखा हुआ कहां है कि आदतन खादीधारी हो और खादी के सिवा और कुछ नहीं पहनता हो। यह तो इसमें कुछ लिखा नहीं है कि रोज सिगरेट पीता हो, पान नहीं खाता हो। मैं सिगरेट भी पीता हूं, दूध भी पीता हूं।

तब उसमें जोड़ना पड़ा कि आदतन खादीधारी हो, संपूर्ण खादीधारी हो और खादी के सिवाय और कुछ नहीं पहनता हो। इतना लिखना पड़ा।

हलफनामे में आदमी कहता है—I shall speak the truth, complete truth and nothing but the truth.

सच बोलूंगा, पूरा सच बोलूंगा और सच के सिवाय और कुछ नहीं बोलूंगा। तब कहीं झूंठ बोलता है वह जाकर। तब तक झूंठ नहीं

बोलता। इतनी पूरी कसम खाता है। पहले कानून में इतना ही लिखा था कि इसको फांसी पर लटका दो। उसको लटका दिया। उसके वकील ने कहा—अब उतार दो।

मरा तो नहीं है—कैसे उतार दें ?

वह इसमें लिखा नहीं है। हुकम में इतना ही हुआ है कि फांसी पर लटका दो।

अब हुकम में लिखा जाता है—टुबी हेंग्ड बाइ दि नेक टिल ही डाइज (To be hanged by the neck till he dies) फांसी पर लटकाओ, गरदन के सहारे लटकाओ और जब तक न मरे तब तक लटकाओ। इतना पूरा कानून में लिखना पड़ा। संविधान से कानूनबाजी बढ़ती है। कानून का सहारा मनुष्य कब लेता है ? जब एक दूसरे का भरोसा नहीं हो। कानून से बचने के लिये कानून का सहारा लिया जाता है। कानून का सहारा कानून का पालन करने के लिये कभी नहीं लिया जाता। लेने की जरूरत नहीं। कानून का सहारा कब लिया जाता है ? जब जुर्म हुआ हो, जब कोई कसूर हुआ हो। जब कोई अपराध या गुनाह हुआ हो, तब आप कानून का सहारा लेते हैं। कानून का सहारा अपराधी के लिये है, निरपराध के लिये नहीं है।

अब आप बतलाइये कि निरपराधियों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं या अपराधियों की। और यह मुझसे पूछने की जरूरत नहीं, पुलिसवालों और वकीलों से पूछिये। वे भी कहेंगे—निरपराधियों की संख्या बढ़नी चाहिये। गुनाहगारों की संख्या कम होनी चाहिये। बेगुनाहों की संख्या, शरीफ आदमियों की संख्या बढ़नी चाहिये समाज में। ऐसे आदमियों की संख्या बढ़नी चाहिये जिनको संविधान का सहारा न लेना पड़े। संविधान कब आता है ? जब हम अपनी गलती का समर्थन करना चाहते हैं। कानून से बचने के लिये संविधान का सहारा लिया जाता है। इसलिये संस्था का सहारा, संस्था का आधार, उसकी बुनियाद संविधान नहीं होना चाहिये। संस्था की बुनियाद संविधान हो इसका नाम है पार्लिया-

मेण्टेरिज्म। यह संसदवाद कहलाता है। यह तीसरी तरह की संस्था मानी जाती है। कान्स्टिट्यूशनल इन्स्टिट्यूशन का नाम है पार्लियामेण्ट। असल पार्लियामेण्ट के अन्दर भी कानून नहीं है। फिर भी मान लीजिये। पार्लियामेण्ट के बारे में यह कहा जाता है कि पार्लियामेण्ट सर्वसमर्थ है, सर्वोपरि है। संविधान ही आलपावरफुल है। इससे ऊपर कुछ नहीं। तो फिर पार्लियामेण्ट क्या कर सकती है। वे लोग सुन्दर जवाब देते हैं–सिर्फ पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष नहीं बना सकती और सब कुछ कर सकती है। बस यह सोवरेन्टी आफ पार्लियामेण्ट (Sovereignty of Parliament) कहलाती है। इसकी व्याख्या क्या है ? जितने इंग्लैण्ड के राजनेता हुये उन लोगों ने एक सूत्र बना लिया—पार्लियामेण्ट सब कुछ कर सकती है, सिर्फ इतना ही नहीं कर सकती कि पुरुष को स्त्री में बदल दे और स्त्री को पुरुष में बदल दे। यानी जो नैसर्गिक है उसको बदल नहीं सकती और सब कुछ कर सकती है। मनुष्य जो कुछ कर सकता है वह सब कुछ पार्लियामेण्ट कर सकती है। अब हमारे सामने एक सवाल आता है। आपके यहां एक पार्लियामेण्ट बनी सब लड़कों की। यहां जितने लड़के आये हुये हैं उन सबकी पार्लियामेण्ट बने। इस पार्लियामेण्ट में एक दिन एक लड़के के खिलाफ तय कर लिया कि इस लड़के की एक मूंछ उतार लेनी चाहिये। सर्व सम्मति से। यूनानिमस वोट है (Unanimous)। उसमें एक भी लड़का–उस लड़के के सिवाय–ऐसा नहीं जो इसके खिलाफ है। लड़कों ने मिलकर तय किया। दाहिनी तरफ की उतारेंगे तो बायें तरफ की भी उतारेंगे। और इस तरह उसे कुरूप बनायेंगे। आप मुझे यह बतलाइये कि यह क्या लोकनीति हुई ? सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव पास हुआ है। इसको लोकनीति आप मानेंगे ?

न्याय-पंचायत या अन्याय-पंचायत ?

एक गांव में मैं गया था। वहां शुरू शुरू में न्याय पंचायत कायम हुई थी। उन्होंने मुझे बतलाया कि हमारे यहां पंचायत का उद्घाटन

कीजिये। इसका काम पहले से शुरू हो गया था पर हमारी तारीख माफिक नहीं आती थी। इसलिये उद्घाटन बाद में हुआ। हमने भाषण किया—ऐसा न्याय होना चाहिये। उद्घाटन कर दिया। एक आदमी सामने आया। कहने लगा—आपने सब कुछ किया, पर हमारे साथ तो बड़ी ज्यादती हुई। कहा—क्या हुआ ? हमने एक दिन चोरी की, उसने साफ बतलाया। क्या चुराया ? कुछ आम पके हुये थे, पेड़ से तोड़ लिये। तो न्याय पंचायत ने सजा यह सुनाई—जूतियों में पानी भरकर उसे पिलाओ। यह तो अन्याय हो रहा है और आप ऐसी न्याय पंचायतें गांव गांव में कायम करना चाहते हैं। मुझ से सवाल पूछा—मैंने कहा कि यह तो तोबा करने की बात है। अगर ऐसी चीज हो गई है तो न्याय-पंचायत नहीं है, यह तो सामुदायिक अन्याय पंचायत है। पूरे का पूरा समुदाय भी अन्याय कर सकता है। इसलिये कानून से बनी हुई कोई संस्था अगर सर्वोपरि है, तो मानवता सर्वोपरि नहीं है।

ताकत कानून या संख्या की नहीं, बल्कि मानवता की

अभी एक अदालत ने फैसला दिया कि अमेरिका में फलां काले आदमी ने एक गोरी स्त्री से एक डालर छीन लिया। साढे तीन रुपये या पांच रुपये का एक डालर होता है। इसके लिये उसको मार डालने की—इलेक्ट्रिक कुर्सी पर बैठा कर मार डालने की सजा सुनादी गई। यह अदालत की दी हुई सजा है। इसको अमेरिका की पार्लियामेण्ट भी मंजूर फरमा ले, तब भी क्या यह जायज होगी ? तो कान्स्टिट्यूशन के दो पहलू हुए। एक पहलू यह कि कान्स्टिट्यूशन का सहारा मनुष्य तब लेता है जब संविधान से बचना चाहता है। और दूसरा संविधान से पैदा हुई संस्था अगर सर्वोपरि है तो वह ईश्वर का भी स्थान ले लेती है और मानवता का भी स्थान ले लेती है। हम क्या चाहते हैं ? मनुष्य सदाचार का कायल रहेगा। मनुष्य पर सत्ता सदाचार की नीति की होगी, किसी कानूनी संस्था की नहीं, किसी संविधान की नहीं। मनुष्य सर्वोपरि होगा। संविधान उसकी मनुष्यता को बचाने के लिये होगा।

इसलिये लोकनीति में संविधान को स्थान है। लेकिन लोकनीति के अंदर संविधान नहीं है। संविधान में हम अधिक से अधिक अधिकार रख लेते हैं। जितने अधिक अधिकार संविधान में रहेंगे उतना संविधान अच्छा होगा। किसके लिये अधिकार ? समाज में जिनकी संख्या और शक्ति तथा प्रतिष्ठा कम है उनके लिये जितने अधिक अधिकार रखे जायेंगे वही संविधान अच्छा माना जायगा।

तो तीन चीजें अच्छे संविधान की कसौटी में आगयीं। संविधान कौन बनायेगा ? यह तो आप चार सेक्रेटरियों को बिठा कर राय लेकर संविधान बना लीजिये। बनाना कोई मुश्किल नहीं है। संविधान किस आधार पर बने-यह मुख्य चीज है। लोग आपसे पूछेंगे कि आपके सर्वोदय का संविधान क्या होगा ? आप पूछनेवालों से कहिये-कि हम नहीं बनायेंगे। एक बड़े होशियार आदमी बनायेंगे। हम कोई बनाना जानते हैं ? हम में कहां अकल है ? हम समझते भी हैं संविधान कैसे बनता है ? 'पर तुम क्या समझते हो ?' हम इतना ही चाहते हैं कि इसमें तीन चीजें जरूर हों-जिनकी संख्या कम हो, जिनमें सामर्थ्य कम हो और जिनकी समाज में प्रतिष्ठा कम हो उनके हक वहां पर बरकरार रखेंगे। उनके हक महफूज रखेंगे। जो हक आज हासिल नहीं हैं वे दिये जायेंगे। जिनकी संख्या अधिक है, जिनकी सामर्थ्य अधिक है, जिनकी प्रतिष्ठा अधिक है उनके जो अधिकार हैं वे ही अप्रतिष्ठित असमर्थ, अल्पसंख्यकों को दिये जायें। यह मुख्य कसौटी है। इसे फण्डामेण्टल राइट कहते हैं। ये मूलभूत अधिकार होते हैं। मूलभूत अधिकार से मतलब क्या है ? जो सामर्थ्यवान लोगों के अधिकार हैं वही अधिकार कमजोरों को भी हों। उन लोगों को भी जो अक्षम हों, वे अधिकार होंगे। और व्यवस्था किस लिये होगी ? अक्षम नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण के लिये। अक्षम नागरिक के अधिकारों का संरक्षण शासन का मुख्य ध्येय होना चाहिये। शासन किसलिये ? जिनकी संख्या कम, जिनकी सामर्थ्य कम, और जिनकी प्रतिष्ठा कम उन लोगों के अधिकारों

की सुरक्षा के लिये। जब यह आप सोचेंगे तब शासन के क्या आधार हों यह ज्ञात हो जायगा। जो कम हैं उन लोगों का संरक्षण करना। किनके खिलाफ ? जो अधिक हैं उनके खिलाफ।

यह शस्त्र-शक्ति कर सकती है क्या ? जिनकी संख्या अधिक है उन्हींके हाथ में फौज है। जिनकी संख्या अधिक है उन्हींके हाथों में सरकारी नौकरियां हैं। जिनकी संख्या अधिक है उन्हींके हाथों में शिक्षण है। तो समाज की सारी शक्ति तो उनके हाथ में है जिनकी संख्या अधिक है। और संरक्षण उनको देना है जिनकी संख्या कम है। यह शारीरिक सामर्थ्य से दी जा सकेगी ? बिलकुल नहीं। इसलिये लोकनीति के अन्दर शस्त्रबल और सत्ताबल नहीं हो सकता। शस्त्रबल और सत्ताबल तो बहुसंख्या के साथ है। और लोकनीति में तो आप चाहते हैं कि अल्पसंख्यकों के अधिकार सुरक्षित हों। अल्पसंख्यकों के अधिकार सुरक्षित रखना है तो शासन के आधार संख्या और सत्ता नहीं हो सकती। यही लोकनीति है। इसे शासन-मुक्ति कह दिया है। नाम आप कुछ भी ले लीजिये।

यहां पर जो लड़का कमजोर होगा, जो लड़के थोड़ी संख्या में होंगे, उन लड़कों को आजादी के साथ आप लोगों में रहने के लिये किस चीज की जरूरत है कि आप उनको बराबर का मानें ? अब यह आपसे कौन मनवायेगा ? आपको तो संख्या ज्यादा है, आपकी ताकत ज्यादा है और इज्जत ज्यादा है। इसलिये लोकनीति में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि आप सब की ताकत और तादाद से परे कोई शक्ति हो। उसको मानवता की शक्ति हमने माना है। आप की ताकत और इज्जत से परे एक शक्ति है, आप की तादाद से भी परे एक शक्ति है। संख्याबल, शस्त्रबल से भी आगे एक शक्ति है। इस शक्ति को हम लोकनीति का आधार मानते हैं। इसका नाम लोकशक्ति है। इसे लोकनीति भी कह सकते हैं। लोकनीति वह शक्ति है जो बहुसंख्या से परे है, जो सत्ता से भी बड़ी शक्ति है। इसके सामने सत्ता भी नहीं टिक सकती। उसको

अगर आपने मान लिया है तो जैसे वे पुराने लोग कहते थे कि ईश्वर का डर मन में रखो, मनुष्य तुम्हारा बदला नहीं ले सकेगा, ईश्वर तुम्हारा बदला ले सकेगा, यह चीज धर्म के नाम पर लोगों के मनों में थी। अब हम चाहते हैं कि धर्म के नाम पर नहीं, डर के नाम पर नहीं, पर मानवता के नाम पर यह चीज आवेगी। इसको विश्व कुटुम्ब वृत्ति कहते हैं। सारे विश्व को हम एक परिवार मान लेते हैं। ग्राम-परिवार–विनोबा ने और गांधी ने उसको उसका एक प्रतीक माना है–एक सगुण मूर्ति।

भगवान कृष्ण की दो मूर्तियां हैं–एक आपके घर में, आपके पूजाघर में, छोटे से सिंहासन पर। चांदी की, पीतल की, एक इन्च की या ऐसी ही छोटी सी मूर्ति है। दूसरी द्वारकाजी के मन्दिर में संगमरमर की बनी हुई बड़ी मूर्ति। एक कृष्ण की छोटी मूर्ति है और एक बड़ी मूर्ति है। पर मूर्तियां दोनों भगवान की ही हैं। गुण में कोई अन्तर नहीं। ग्राम-परिवार मानवता की छोटी आकृति है और विश्व-परिवार मानवता की बड़ी आकृति है।

सही आदर्श – विश्व-परिवार

तो अब क्या हुआ ? इण्टरनेशनलिज्म अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीयता नहीं, जागतिक सरकार भी नहीं, सारे विश्व की एक सरकार भी नहीं, बल्कि विश्व-परिवार। पुराने लोगों ने उसको नाम दिया था वसुधैव कुटुम्बकम्। वसुधा ही कुटुम्ब है। सारी पृथ्वी हमारा कुटुम्ब है। औपचारिकता यदि कम से कम कहीं होती है तो कुटुम्ब में होती है। वह जन्म सिद्ध है, यह अलग चीज है। पर इतना गुण तो इसमें है कि औपचारिकता कम से कम है। औपचारिकता कम से कम जहां हो उसे आदर्श हमने मान लिया। यह उपलक्षण है, मतलब एक निशान है। कुटुम्ब एक उप-लक्षण है, एक संकेत है। सारा विश्व एक कुटुम्ब होगा। मतलब यह कि संविधान के सहारे व्यवहार नहीं चलेगा। व्यवहार चलेगा संस्था के सहारे। आज जैसे नानआफिशियल (non-official) व्यवहार चलता

है। जितने गैरसरकारी व्यवहार हैं वे मित्रता पर चलते हैं। सरकारी व्यवहार–प्रजातन्त्र के जितने व्यवहार होते हैं वे कानून से होते हैं। और जो प्रजातन्त्र के व्यवहार नहीं होते वे किसी कानून से नहीं चलते। लोकनीति में और राजनीति में यह महान अन्तर है। राजनीति वाला आपसे कहेगा कि इसको रेग्यूलराइज कर लीजिये। रेग्यूलराइज कर लीजिये से मतलब आपके जो शासन से व्यवहार हैं या हो रहे हैं उनको कानून में ले लीजिये। उनका कानून बना लीजिये। पता नहीं कि किस दिन आपकी तबियत बदल जाये या उसकी नियत बिगड़ जाये। यह मकान आपका है ? जी हां, हमारा है। कैसे है आपका ? मेरे नाम पर लिखा हुआ नहीं है, भाई के नाम पर लिखा हुआ है। तो आप इसको क्यों अपना कहते हैं ? हम रहते हैं। आप कब तक रहेंगे ? जब तक जियेंगे। कैसे मालूम ? भाई हमें रहने देगा। उसकी नियत बदल गयी तो ? तो निकाल देगा। इसलिये ऐसा करिये कि आपकी जब तक दोस्ती है आप लिखा लीजिये। तो लिखाने से क्या होगा ? वह नहीं चाहेगा तब भी रखना पड़ेगा। तो साथ रहने में मजा ही क्या है ? जो चाहता नहीं, तब भी हम उसके साथ रहें, जबरदस्ती रहें इसमें भी कोई आनन्द है ? वह हमारा अधिकार है। किस चीज का अधिकार है ? तेरे साथ रहने का अधिकार है। साथ रहने का अधिकार है और झगड़े से रहते हो। झगड़े से साबित कौनसी चीज करते हो ? साथ रहने का अधिकार, अदालत में जाकर। तेरा चूल्हा अलग, हमारा चूल्हा अलग। आंगन में दीवार आ रही है। तुम एक इंच इधर मत आओ। तुम्हारे लड़के ने कल कंकर फेंक दिया। तुम्हारे बेटे ने ईंट फेंक दी। यह अधिकार अदालत से प्राप्त कर लिया साथ रहने का। इस तरह से दुनियां में साथ नहीं रहा जा सकता। इसलिये यह जो वास्तविकता को औपचारिक बना लेने की ताकत है वह बहुत मतलब नहीं रखती। इस तरफ इस वक्त विनोबा के विचार दौड़ रहे हैं। वह तो कोई ऐसा आदमी नहीं है जो राज संस्था वगैरह बनाता है। जैसे दूसरे

बनाते हैं। क्रांतिकारी आदमी है। वे कानून नहीं जानते हैं। क्रांतिकारी बहुत सुधार भी नहीं जानते। दुनियां में जितने भी क्रांतिकारी हुए वे सुधार और कानून की फिकर करनेवाले लोग नहीं हुए। लेकिन खोज किस दिशा में है? हम औपचारिकता की तरफ से वास्तविकता की तरफ कैसे क़दम बढायें?

लोकमत–औपचारिक और वास्तविक

वोट औपचारिक है। औपचारिक संमति को हम वास्तविक संमति में कैसे बदल दें? वोट औपचारिक है, औपचारिक है तो आपकी वास्तविक संमति मेरे साथ है या नहीं है? दोनों बातें हो सकती हैं। और मैंने यह देखा कि मेरे एक साथी को वोट मिल गया। मैं हैरान रह गया। उसको सौ में से नव्वे वोट मिल गये। गांव में गया। सब लोग गालियां दे रहे थे। गालियां भी देते हो, वोट भी देते हो। वोट नहीं देते तो क्या करते? हमारे पास फलां आदमी आये। कहने लगे इज्जत चली जावेगी। तो इसलिये हम ने वोट भी दे दिया और आदमी भी दे दिये। पर हम उसको चाहते नहीं। गाली के साथ वोट देते थे। अब मुझे बताइये कि वोट से वास्तविक हार्दिक संमति का कहीं पता लगाया जा सकता है। वोट से हार्दिक संमति का अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। तो आज की पब्लिक ओपिनीयन (Public opinion) फार्मल है, औपचारिक है। इस औपचारिक लोकमत की जगह वास्तविक लोकमत को दाखिल करना चाहते हैं। औपचारिक लोकमत नहीं चाहते। वास्तविक लोकमत चाहते हैं। जो वास्तविक होता है औपचारिक नहीं होता, उस लोकमत में शक्ति रहती है। आज हमारे जितने काम हो रहे हैं यहां औपचारिक लोकमत में हो रहे हैं। इसलिये आप कहते हैं कि आये दिन जुलूस निकलते हैं, हड़तालें होती हैं, आये दिन पत्थर ढेले चलते हैं, होलियां जलती हैं, कारण वास्तविक लोकमत नहीं है। वास्तविक लोकमत में प्रभाव होता है। औपचारिक लोकमत में प्रभाव नहीं होता। तो वह अब पहला सूत्र ले लीजिये। हम कहां

क़दम बढाना चाहते हैं ? औपचारिकता की तरफ से हार्दिकता की तरफ। मनुष्य का मत भी औपचारिक नहीं होगा। हार्दिक होगा। एक मिसाल और दे दूं। जिसमें यह पूरी चीज आपके सामने साफ हो जाये। जब मैं खड़ा हुआ कोई दस साल पहले इलेक्शन में। दस ग्यारह साल हो गये। तो मुझ से पूछा गया–तुम लोगों के प्रतिनिधि बनकर जाना चाहते हो ? हां। लोगों से पूछा अस्पृश्यता-निवारण चाहते हो ? तुम तो वहां जाकर अस्पृश्यता-निवारण करनेवाले हो। हां करनेवाला हूं। हां चलो घर घर में। लोगों से पूछो, और अस्पृश्यों से भी पूछो कि क्या वे अस्पृश्यता-निवारण चाहते हैं ? अगर नहीं चाहते हैं तो क्या कानून बनाओगे। तुम झूंठे हो। चुनौती मुझे दी। आपके साथ गांव में चलता हूं। मैं अस्पृश्य से पूछूंगा तुम राजपूत जाट के साथ बैठना चाहते हो ? राजपूत, जाट से पूछूंगा कि ब्राह्मण की बराबरी करना चाहते हो ? वे कहेंगे हां हां। जितने नीचे हैं वे ऊपर वालों की बराबरी करना चाहते हैं। इसे वास्तविक लोकमत कहते हैं। वह जो ऊपर है वह नीचेवालों के बराबर आये यह लोकमत नहीं है। मेरे बराबर हो यह स्वार्थ है। नीचेवाला ऊपरवाले की बराबरी करना चाहता है यह सार्वत्रिक चीज है। इसे विवेकी लोकमत कहते हैं। तो लोकमत को जांचना, लोकमत का परीक्षण करना, लोकमत का अन्दाज़ लगाना, उसको कूंतना यह अपने में अलग चीज है। तो लोकमत कूंतने की विधि कौन सी होगी ? हार्दिकता की होगी।

वास्तविक लोकमत क्या है ? तो विनोबा कभी संपत्तिदान की बात करता है, कभी सर्वोदयी क्रांति की बात करता है, कभी समझौते की बात करता है, अभी उसके हाथ में कोई ठीक नुस्खा नहीं लगा है। कोई साधन ठीक ठीक हाथ में नहीं आया है। पर खोज है। खोज किस दिशा में है ? आज जो औपचारिक लोकमत है वह वास्तविक लोकमत में बदल जाये, औपचारिकता अगर वास्तविकता में बदल जायगी तो फिर क्रांति की आवश्यकता नहीं रहेगी। संविधान से ही समाज-

परिवर्तन होगा। पार्लियामेण्ट ही समाज में परिवर्तन कर सकेगी। आज पार्लियामेण्ट में समाज परिवर्तन करने की शक्यता क्यों नहीं रह गयी है ? इसलिये कि लोकमत औपचारिक है। वास्तविक लोकमत अभी नहीं बना है। वास्तविक लोकमत को कायम करने के लिये और औपचारिक लोकमत को कम करने के लिये जो प्रयास हो रहा है उसको आज क्रांति कहते हैं। पार्लियामेण्ट में आज कोई सामर्थ्य नहीं है। वहां तो यह होना चाहिये था। पर ऐसी कौनसी चीज है जो रह गई है। गरीबों की संख्या देश में अधिक है। गरीबों के वोट अधिक हैं। गरीब अगर चाहें तो एक भी अमीर असेंबली में नहीं जा सकता। गरीब अगर चाहें तो एक भी बाबू नहीं जायेगा। गरीब अगर चाहें तो एक भी जमींदार नहीं जायेगा। पूंजीपति नहीं जायेगा। एक भी पुजारी पुरोहित नहीं जायेगा। और फिर भी देखते हैं कि बाबू, अमीर, पुजारी और पुरोहित और पण्डित असेंबली में आज जाते हैं। कसूर किसका है ? यह कह देना आसान है कि उन लोगों का कसूर है। कसूर उस गरीब का है जो डण्डे से डरता है और धमकी लालच में आता है, जो वोट बेचता है और वोट दे देता है, जिसका वोट छीना जा सकता है, खरीदा जा सकता है। गरीब का वोट आज छीना जा सकता है और खरीदा जा सकता है, इसलिये आज लोक राज्य में भी राजनीति है, लोकनीति नहीं। लोकराज्य में भी लोकनीति क्यों नहीं आई ? और राजनीति क्यों रही ? परिस्थिति आज ऐसी है कि गरीब का वोट छीना जा सकता है और खरीदा जा सकता है। तो क्या यह कानून से बदला जा सकता है ? कानून से बदल सकते हो तो और कुछ करने की जरूरत नहीं। फिर कम्यूनिज्म की जरूरत नहीं। विनोबा के आंदोलन की जरूरत नहीं। क्रांति की भी जरूरत नहीं। अगर यह कानून से हो सकता है तो क्यों नहीं होता ? गरीब कहता है कि वह कुछ असमंजस में है। एक तरफ कहते हैं कि कानून से होगा, दूसरी तरफ कहते हैं कि कानून से होता ही नहीं। हमारी बात कोई मानता ही नहीं। दो तरह की स्थिति

है। तो गरीब की बात में ताकत कैसे आये ? लोकनीति में सामर्थ्य लोकमत से आता है। लोकनीति वैधानिक संस्थाओं में नहीं आती। लोक-जीवन में आती है। तो लोगों में शांति प्रियता हो, लोगों में मर्यादा हो, लेकिन लोग किसी कानूनी संस्था के दास न बनें। चाहे वह कानूनी संस्था पार्लियामेण्ट ही क्यों न हो। तब लोकनीति कायम होगी। तो अब इस सिलसिले को जहां से शुरू किया था वहीं लाकर खतम कर देता हूं आज के लिये।

सिंहावलोकन

विषय तो कुछ ऐसा नहीं कि जो दो भाषणों में पूरा रख दूं। पर कुछ बुनियादी बातों को आज मैंने आपके सामने रख दिया है। शुरू मैंने कहां से किया था ? लोकमत के लिये दो चीजों की आवश्यकता है—एक उसका यूनिट, एक इकाई और दूसरा उसका क्षेत्र जहां उसका प्रयोग हो रहा हो। प्रयोग करने वाला वह प्रयोगी और जिस क्षेत्र में प्रयोग होगा वह प्रयोग-क्षेत्र। प्रयोगी कौन होगा ? निरुपाधिक मानव जो सत्ताधारी नहीं है, राजा नहीं है, सैनिक नहीं है, निरुपाधिक मानव है। निरुपाधिक मानव का दूसरा लक्षण वह नागरिकता, सांप्रदायिकता और सदस्यता से परे होगा। उसका क्षेत्र कौनसा होगा ? शरीर की मर्यादा का क्षेत्र होगा स्वदेश, लेकिन भावनात्मक क्षेत्र कौन सा होगा ? समस्त जगत्। इसलिये उसका व्यक्तित्व, उसका दिल और दिमाग सारे विश्व तक व्यापक रहेगा। प्रयोग जितनी शरीर की मर्यादा होगी उतने क्षेत्र में होगा। इसलिये उसका जो प्रयोग का क्षेत्र होगा वह मानव का छोटा रूप होगा। और मानवता का बड़ा रूप ? वह विश्वरूप होगा। श्रीकृष्ण भगवान की जैसी दो मूर्तियां उसी तरह से मानव के पास मानवता के दो क्षेत्र करें। यहां परस्पर विरोध नहीं है। छोटी और बड़ी मूर्ति में। आकार का सिर्फ फरक है। पर मूर्ति के गुणों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों मूर्तियां गुणों में समान है। इसलिये ग्राम परिवार और विश्व कुटुम्ब। ग्राम परिवार छोटी मूर्ति, और विश्व

कुटुम्ब विराट मूर्ति। दोनों का विकास कौन करेगा? निरुपाधिक मानव, जो प्रयोगी होगा उसके व्यक्तित्व में आज विरोध पैदा हो गया है। उस विरोध का कारण कौनसा है? हैसियत–उसकी विरोधी हैसियत–विरोधी हैसियत कौनसी है? एक नागरिकता और दूसरी सदस्यता। ये उसकी हैसियत में विरोध पैदा करती हैं। इसका उपाय क्या है? मानवता के आधार पर ही नागरिकता और सदस्यता चलें। नागरिकता और सदस्यता के नियम अलग, और मानवता के सदाचार और नियम अलग। इस तरह के दो भिन्न पैमाने नहीं रहेंगे। दो अलग अलग मानदण्ड नहीं होंगे। सदाचार का और नीति का मानदण्ड सामुदायिक और व्यक्तिगत एक होगा। उसी तरह से मानवता और नागरिकता के पैमाने भी समान होंगे।

उनकी व्यवस्था का आधार क्या होगा? उसकी व्यवस्था का आधार आजकी तरह कोई भी संस्था नहीं होगी। आज जितनी तरह की संस्थायें हैं, देववादी, धर्मवादी संस्था, सैनिक संस्था और विधान-वादी संस्था। हमारी नागरिकता के लिये मानव-प्रधान नागरिकता के लिये ये तीनों आधार किसी काम के नहीं हैं। इसलिये इन तीनों आधारों के बदले चौथा आधार खोजना होगा। क्यों खोजना होगा? जिनकी संख्या कम है, जिनकी सामर्थ्य कम है, समाज में जिनकी प्रतिष्ठा कम है, वे बराबरी से जी सकें, उनकी स्वतन्त्रता और समानता कैसे रहेगी। स्वतन्त्रता और समानता का मतलब बलवान की स्वतन्त्रता और समानता नहीं। समानता और स्वतन्त्रता का मतलब यह है कि जो अक्षम है वह भी स्वतंत्र रहे, जो अक्षम है वह भी बराबरी से रह सके। यह तभी होगा जब पार्लियामेण्ट सर्वोपरि नहीं होगी। मानवता के नियम का उलंघन पार्लियामेण्ट भी नहीं कर सकेगी। इसलिये विधान-वादी लोकनीति नहीं होगी। लोकनीति विधानवाद से परे होगी। अंतर्राष्ट्रीयता लोकनीति नहीं है। सारे जगत् की एक सरकार भी लोकनीति नहीं है। सारे जगत् का एक परिवार विश्वकुटुम्ब लोकनीति है। इस तरह से लोकनीति की तरफ जाने के लिये जो मुख्य मुख्य संकेत थे वे मैंने आपके

सामने रखे हैं । ये अध्ययन के विषय हैं । आपको और मुझे सब को इस दिशा में संयोजन जैसे हो सकता है, इस दिशा में संविधान कैसे बन सकता है, यह सब सोचने की चीज है । मानव का विकास हो रहा है, धीरे धीरे एक एक करके नई नई चीजें आयेंगी । नई नई शक्तियों का आविष्कार होगा, नई नई शक्तियां प्रकट भी होंगीं । मैंने लोकनीति के कुछ आधार, उसके कुछ मूल तत्वों पर विचार किया है । और जहां तक मेरा अध्ययन पहुंचा है उसका हिस्सा आपके सामने मैंने रखा है । अधिक तो आप लोगों को अपने विचार और अध्ययन से पूर्ति कर लेनी होगी ।

हमारे कुछ प्रकाशन

(खादी-ग्रामोद्योग विद्यालय व्याख्यान माला के अन्तर्गत)

१. समाजवाद और सर्वोदय — मूल्य ०–२०
व्याख्याता—श्री प्रेमनारायन माथुर

२. अहिंसा के आचार और विचार का विकास — मूल्य ०–१०
व्याख्याता—प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलालजी

३. राजनीति और लोकनीति — मूल्य ०–१०
व्याख्याता—श्री धीरेन्द्र मजूमदार

४. बालजीवन की करुणता और हमारा कर्तव्य — मूल्य ०–१५
व्याख्याता—श्री काशिनाथ त्रिवेदी

५. संत तुकाराम — मूल्य ०–७५
ले० वृन्दा अभ्यंकर

जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर